इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

खंड

4

रोजमर्रा में राज्य और सत्ता की स्थानीय संरचना

इकाई 10
भारत में राज्य और समाज 144

इकाई 11
स्थानीय शासन 158

इकाई 12
सामाजिक आंदोलन और प्रतिरोध 173

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 भारत में राज्य और समाज*

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 राज्य, राष्ट्र और समाज

10.3 स्वतंत्र भारत में राजनीति की प्रकृति

10.3.1 रणनीति राजनीतिक स्तर पर

10.3.2 रणनीति आर्थिक स्तर पर

10.3.3 राष्ट्र निर्माण के प्रयासों को चुनौती देने वाली शक्तियाँ

10.4 राष्ट्रीय एकीकरण

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 उपयोगी पुस्तकें

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पाएंगे:

- राज्य, राष्ट्र और समाज की परिभाषा और उनके बीच अंतर करना;
- स्वतंत्र भारत में राजनीति की प्रकृति का वर्णन करेंगे;
- राष्ट्र निर्माण के कार्य में शामिल रणनीतियों और चुनौतियों का वर्णन करेंगे;
- राष्ट्रीय एकीकरण को परिभाषित करना और राष्ट्रीय एकीकरण की धमकी देने वाली शक्तियों का वर्णन करना।

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में, हम तीन अंतर्संबंधित अवधारणाओं, अर्थात्, राष्ट्र, राज्य और समाज पर चर्चा करेंगे।

फिर हम भारतीय राष्ट्रीय राज्य के उद्भव से इस सामान्य चर्चा को जोड़ कर देखेंगे। हम भारत में राष्ट्र निर्माण के कार्य से जुड़ी रणनीतियों और चुनौतियों की जाँच करेंगे। अंत में, अंतिम भाग राष्ट्रीय एकीकरण के मुद्दे से संबंधित है।

* प्रोफेसर रवींद्र कुमार द्वारा ईएसओ 12 खण्ड 3, इकाई 13 से अनुकूलित।

10.2 राज्य, राष्ट्र और समाज

आधुनिक समय में राजनीति पर चर्चा करते हुए, हम आमतौर पर राज्य, राष्ट्र और समाज की बात करते हैं। पश्चिमी यूरोपीय अनुभव के संदर्भ में, तीन शब्द कुछ हद तक नीरस प्रतीत होते हैं। कई अन्य जगहों के मामलों में ऐसा नहीं है। इसलिए, यह आवश्यक है कि हम पहले इन शर्तों को परिभाषित करें।

i. **राज्यः** राज्य एक राजनीतिक संघ है, जिसकी विशेषता है।

   a. प्रादेशिक क्षेत्राधिकार

   b. कम या अधिक गैर–स्वैच्छिक सदस्यता

   c. नियमों का एक समूह जो संविधान के माध्यम से अपने सदस्यों के अधिकारों को परिभाषित करता है।

   d. अपने सदस्यों पर सत्ता की वैधता का दावा करता है।

किसी राज्य के सदस्य को आमतौर पर नागरिक के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त प्रायः राज्य राष्ट्र से निकटस्थ होता है।

ii. **राष्ट्रः** यह शब्द ऐसे लोगों के समूह को संदर्भित करता है, जिन्होंने संस्कृति, धर्म, भाषा और राज्य आदि की सामान्य पहचान के आधार पर एकजुटता विकसित की है। किसी भी समूह की राष्ट्रीय पहचान, खुद को कुछ मानदंडों जैसे कि निवास स्थान, जातीय मूल, संस्कृति, धर्म, भाषा के आधार परिभाषित करती है।

iii. **समाजः** यह सामाजिक संगठन की सबसे व्यापक श्रेणी है, जिसमें बड़ी संख्या में सामाजिक संस्थाएं शामिल हैं, जैसे रिश्तेदारी, परिवार, आर्थिकी और राजनीति इस अर्थ में, समाज शब्द का तात्पर्य सामाजिक संबंधों से है, जो परस्पर जुड़े हुए हैं। अन्तर्क्रियाओं द्वारा लोग एक दूसरे लोगों के साथ सामाजिक संबंध बनाते हैंं से बातचीत में। सामाजिक संबंधों के बार–बार नियमित किए गए प्रतिमान संस्थागत हो जाते है और इसलिए एक संबंधपरक अवधारणा के रूप में समाज में सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन शामिल है।

दूसरी ओर, एक ठोस अवधारणा के रूप में समाज शब्द एक सामान्य शब्द है, जो राज्य या राष्ट्र को समाविष्ट कर सकता है। यह दोनों में से किसी एक या दोनों के साथ भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, जर्मनिक समाज में पूर्वी जर्मनी, पश्चिम जर्मनी, ऑस्ट्रिया, इटली, स्विट्जरलैंड आदि के जर्मन भाषी लोग शामिल हो सकते है। एक और उदाहरण लें, हिंदू समाज में नेपाल भारत श्रीलंका और बांग्लादेश के नागरिक शामिल हो सकते हैं।

इसी तरह राज्य में कई समाज शामिल हो सकते है। उदाहरण के लिए, भारतीय राज्य में क्षेत्र, धर्म और भाषा के आधार पर विविध समाज शामिल हैं। आदिवासी समाज, जैसे कि भील, गोंड या नगा भारतीय राज्य के अभिन्न अंग हैं। राज्य, राष्ट्र और समाज की अवधारणाओं पर चर्चा करने के बाद, अब हम भारतीय समाज में राजनीति की प्रकृति की ओर मुड़ते हैं। इस उद्देश्य के लिए, अगले भाग में, हम भारतीय राष्ट्र राज्य के उदभव पर चर्चा करेंगे। आप पूछ सकते हैं कि राष्ट्र राज्य क्या है? एक राष्ट्र राज्य एक राष्ट्र की व्यवस्था को चलाने के लिए नियुक्त एक राज्य के संदर्भ में कहा जाता है या शायद दो या अधिक निकटता से जुड़े राष्ट्रों को। ऐसे राष्ट्र का क्षेत्र राष्ट्रीय सीमाओं से निर्धारित

होता है और इसका कानून चाहे कुछ ही भागों में क्यों न हो, राष्ट्रीय रीति रिवाजों और अपेक्षाओं से निर्धारित होता है। इस अर्थ में, भारत को एक राष्ट्र राज्य के रूप में भी चर्चा की जा सकती है और इसकी राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति पर चर्चा की जा सकती है और इसकी राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति पर चर्चा करने के लिए, हमें पहले उस स्थिति को देखना होगा जिसमें भारतीय राष्ट्र राज्य का उदय हुआ।

10.3 स्वतंत्र भारत में राजनीतिक प्रकृति

स्वतंत्रता आंदोलन के लिए प्रमुख कार्य केवल ब्रिटिश शासन से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि एक आधुनिक राष्ट्र राज्य भी विकसित करना था। हम कह सकते हैं कि इस दिशा में कुछ निश्चित कदम राजनीतिक स्तर पर कुछ निश्चित कदम उठाए गए थे जबकि अन्य आर्थिक स्तर पर थे। हम भारत में राष्ट्र निर्माण के लिए दोनों तरह की रणनीतियों पर चर्चा कर सकते हैं।

10.3.1 रणनीति राजनीतिक स्तर पर

राजनीतिक संगठन, जो भारत में राष्ट्र निर्माण की गतिविधि को अंजाम दे रहा था, मुख्य रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी थी। इस राजनीतिक दल में कुछ मामलों में जनसंख्या और गतिविधियों के विविध वर्ग शामिल थे, कुछ मामलों में राजनीतिक विचारधारा के विपरीत। कांग्रेस पार्टी के सदस्य एक ओर तथा कथित अछूतों से और दूसरी ओर ब्राह्मण और ठाकुर से समाज के विभिन्न तबके के थे। ऐसे लोग भी थे, जो मार्क्सवाद की कसमें खाते थे और कुछ अन्य लोग थे, जो 'हिन्दू राष्ट्र' चाहते थे और फिर ऐसे भी अन्य लोग थे, जो इस्लामी राष्ट्रवाद को बढ़ावा देना चाहते थे। ऐसी विविधता आकस्मिक नहीं थी। पार्टी के नेताओं को शहरी पेशेवर वर्गों से तैयार किया गया था। वे आश्वस्त थे कि राष्ट्र निर्माण उतना ही महत्वपूर्ण था, जितना कि राजनीतिक स्वतंत्रता इसलिए उनकी राजनीतिक गतिविधि का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक विविध समूहों को एक साथ लाना था। यह विषय भारत की स्वतंत्रता के बाद की राजनीति में भी दिखाई देती है।

भारत का संविधानः भारत का संविधान जो 1950 में अपनाया गया राष्ट्र निर्माण के अर्थ में पहला प्रयास था। हमारे पास एक लिखित संविधान है, जो एक व्यापक दस्तावेज है। यह सरकार की नींव या (सरकार का प्रारुप) प्रदान करता है। आइए हम देखें कि यह डिजाइन क्या है?

भारत में संघीय सरकार है। भारत में एक संघीय सरकार का अर्थ है कि केंद्र और राज्यों के बीच अधिकार विभाजित है। संसद शब्द के अलग–अलग अर्थ है, जिसमें से महत्वपूर्ण यह है कि यह लोगों के प्रतिनिधियों की एक सभा है और यह चर्चा के लिए एकत्रित व्यक्तियों का निकाय है। हमारे संदर्भ में, संसद सरकार के विधायी अंग को संदर्भित करता है। राष्ट्रपति देश का संवैधानिक प्रमुख और प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाला मंत्रिपरिषद होता है। प्रधानमंत्री उसका कार्यकारिणी का प्रमुख होता है, जो लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। संसद में राष्ट्रपति और दो सदन होते हैं, अर्थात् राज्यों की परिषद (राज्यसभा) और लोगों (जनता) की सभा (लोकसभा)।

राज्यों में मंत्रिपरिषद का नेतृत्व 'मुख्यमंत्री' करता है, जो विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। हर राज्य में एक विधायिका होती है। कुछ राज्यों में एक सदन है, जबकि दूसरे

में दो हैं। जहाँ एक सदन होता है, उसे विधान सभा या विधानसभा के रूप में जाना जाता है। और जहाँ दो सदन होते हैं, एक को विधान परिषद कहा जाता है और दूसरे को विधान सभा के रूप में जाना जाता है। भारत एक संसदीय लोकतंत्र है और इसका मतलब है कि सरकार जनता की राय से बनी है। इसके लिए राजनीतिक दलों की आवश्यकता है, चर्चा के माध्यम से बहुमत और जिम्मेदार सरकार द्वारा शासन चलाया जाता है।

एक संयुक्त राष्ट्र–राज्य के निर्माण के माध्यम सेद्वारा भारत का संविधान भी अन्य चीजों के अलावा भारतीय नागरिकों के कुछ ''मौलिक कर्तव्यों'' का पालन करता है। उनमें से कुछ हैं:

क) संविधान का पालन करना और उसके आदर्शों और संस्थानों, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान करना।

ख) भारत के सभी लोगों के बीच सामंजस्य और सामान्य भाईचारे की आवना को बढ़ावा देने के लिए।

ग) प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा के लिए।

घ) वैज्ञानिक मनोवृत्ति, मानवतावाद और अन्वेषण और सुधार की भावना विकसित करना।

ङ) मूल्य और हमारी समग्र संस्कृति की समृद्ध विरासत को संरक्षित करना और उसकी कद्र करना इत्यादि।

हमारा संविधान न केवल नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है, बल्कि नागरिकों को आवश्यक आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक लाभ प्रदान करने के लिए राज्य को निर्देश भी देता है। यह स्वतंत्र भारत के शुरूआती चरण के नेताओं का श्रेय जाता है, जो भारतीय राजनीति के संभावित व्यवधान के प्रति संवेदनशील थे। हमारे राष्ट्रीय नेताओं का मानना था कि भारत का संविधान लोगों को संयुक्त राष्ट्र में एकीकृत करने में मदद करेगा।

समाजवादी पैटर्न: समाज में व्याप्त असमानताओं को रोकने या कम करने के लिए समाज के समाजवादी पैटर्न को अपनाने ने राष्ट्र निर्माण के प्रति भारतीय राजनीति के एक और प्रयास का गठन किया। इसने विभाजनकारी प्रवृतियों को समाहित करने में मदद की। अनुसूचित जातियों, आदिवासियों पिछड़े वर्गों, अन्य पिछड़ी जातियों और धार्मिक अल्पसंख्यकों को विशेष विशेषाधिकार देकर जनसंख्या के अधिक से अधिक वर्गों को शामिल किया गया।

प्रारंभिक चरण की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि राजनीतिक सत्ता के लिए संघर्ष के बावजूद, राजनीतिक दलों को राजनीति के मुख्य विषय के बारे में कोई बड़ा असंतोष नहीं था। मुख्य विषय आबादी के विभिन्न तत्वों को एक साथ रखने और राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा में शामिल बहिष्कृत श्रेणियों को शामिल करना था। आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। यह एक कारण है कि हम इस प्रक्रिया के बारे में अंतिम रूप से बहुत कुछ नहीं कर सकते हैं और न ही करना चाहिए। इसके बजाय हमें अब राष्ट्र निर्माण और आर्थिक स्तर की प्रक्रिया की ओर ध्यान देना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु नीचे दिए गए स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) भारतीय राष्ट्रवाद के उद्‌भव के दो कारक क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीतिक स्तर पर राष्ट्रीय भवन में प्रयासों की रूपरेखा क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत?

क) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के सदस्य मुख्य रूप से एक ही जाति से आते थे।

ख) एक संघीय सरकार का कहना है कि प्राधिकरण केंद्र और राज्यों के बीच विभाजित है।

ग) भारत एक संसदीय लोकतंत्र है।

घ) संसद में राष्ट्रपति और दो सदन होते हैं अर्थात् लोकसभा और विधानसभा।

10.3.2 रणनीति आर्थिक स्तर पर

राजनीतिक नेतृत्व द्वारा उठाया गया दूसरा बड़ा कदम देश का आर्थिक पुनरूत्थान था। कोई भी राजनीतिक शासन तभी वैधता हासिल करता है, जब वह लोगों की जरूरतों को पूरा कर सकता है। बदले में लोगों की संतुष्टि वितरित की जाने वाली वस्तुओं की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इसलिए अतः भारतीय राज्य के लिए पहला प्रश्न अर्थव्यवस्था का निर्माण करना था। ऐसा उस समय भारतीय अर्थव्यवस्था के खराब आकार के प्रकार कारण में और भी आवश्यक हो गया था। ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीतियाँ काफी हद तक भारत में उपलब्ध कच्चे माल के शोषण पर आधारित थी, जिसका प्रयोग ब्रिटेन

में उद्योग द्वारा किया जाना था। नीति का परिणाम यह हुआ कि देश में उद्योग का विकास नहीं हुआ। ब्रिटिश शासन के दौरान, जो थोड़ा औद्योगीकरण हुआ, वह केवल अंतरराष्ट्रीय राजनीति में इसके महत्व के कारण हुआ था। इससे देश के आर्थिक विकास में कतई मदद नहीं मिली। इस प्रकार, यह अपरिहार्य था कि स्वतंत्रता के बाद, अर्थव्यवस्था को पुनरूज्जीवित/फिर से जीवित करने के लिए निश्चित कदम उठाए गए थे। आर्थिक गतिविधि को विनियमित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण एक ऐसा कदम था। इस उद्देश्य के लिए भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना की।

नियोजन प्रक्रिया केवल एक आर्थिक गतिविधि नहीं है। योजना आयोग न केवल यह तय करता है कि किस क्षेत्र को कितना उत्पादन करना है, यह विभिन्न राज्यों को परियोजनाएं भी आवंटित करता है। यह वह जगह है, जहाँ राजनीतिक निर्णय लेने पड़ते है। आइए हम एक ठोस उदाहरण लें। मान लीजिए सरकार ने स्टील प्लांट स्थापित करने का फैसला किया। यह न केवल एक स्टील प्लांट के स्थान की आर्थिक व्यवहार्यता के संदर्भ में है कि एक निर्णय नहीं किया जाता है। आयोग आर्थिक दृष्टि से लागतों और लाभों को ध्यान में रखता है और यह उद्योगों के स्थान पर संभावित ऑफसेट क्षेत्रीय असंतुलन के संदर्भ में निर्णय पर भी विचार करता है। इसी तरह, विभिन्न हित समूहों के बीच संतुलन बनाए रखना पड़ता है, जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के आसपास उभरे हैं। इस उद्देश्य के लिए, विद्युत शक्ति के उपयोग का सरल उदाहरण लें। उद्योग के लिए कृषि के वनिस्पत कितनी बिजली उपलब्ध होनी चाहिए एक राजनीतिक निर्णय है। आर्थिक क्षेत्र में, जैसा कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय राजनीति ने विभिन्न हितों को समेटने की नीति का पालन किया है और इस तरह संघर्षों को सतह पर आने से बचाया गया है।

भारतीय राष्ट्र राज्य ने न केवल वितरण के लिए सामान उपलब्ध कराने पर ध्यान केंद्रित किया, बल्कि इसने वितरणात्मक न्याय का मार्ग अपनाया। वितरणात्मक न्याय से तात्पर्य सभी लोगों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का उचित और समान वितरण करना है। वितरणात्मक न्याय के इरादे भारत में समाजवादी समाज के पैटर्न को अपनाने से स्पष्ट हो जाते है। समाज के समाजवादी पैटर्न का अर्थ है कि लोगों को समान अवसर और समान अधिकार प्राप्त हैं। एक प्रशासनिक उपकरण के रूप में राज्य व्यक्तियों को उनके अधिकारों की गारंटी देता है। यह लोगों के कल्याण के लिए सामान और सेवाओं को समान और निष्पक्ष रूप से वितरित करता है। यह नियंत्रण की कठोर सकीर्ण प्रणालियों के उन्मूलन के लिए भी प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, भारत में निजी संपत्ति अनुमेय है, लेकिन तभी तक जब वह मालिक के लिए उन लोगों के नियंत्रण की एक प्रणाली नहीं बनती है, जिनके पास संपत्ति नहीं है। हम कई सामाजिक विधानों में न्याय वितरण के उदाहरण भी पा सकते हैं, जैसे औद्योगिक विवाद अधिनियम, जो औद्योगिक श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करता है या अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, जो अछूत जातियों को भेदभाव से बचाता है या हिंदू विवाह अधिनियम जो हिंदू महिलाओं को अधिकार देता है। इस प्रकार हमारे राष्ट्र निर्माण के प्रयासों में न केवल विकास के लक्ष्य शामिल हैं। बल्कि समानता और सामाजिक न्याय भी शामिल है। आर्थिक स्तर पर रणनीति के संदर्भ में नवीनतम अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की नई आर्थिक नीति को अपनाना है। इसे ही अब हम उन कारकों को देखने के लिए आगे बढ़ेगे, जिन्होंने राष्ट्र निर्माण के हमारे प्रयासों को चुनौती दी है।

10.3.3 राष्ट्र निर्माण के प्रयासों को चुनौती देने वाली शक्तियाँ

बहुत से परस्पर संबंधित कारकों ने समानता और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को प्राप्ति

करने के प्रयासों को बाधित किया है और साथ ही एक राष्ट्र को निर्माण के प्रयासों को बाधित किया है। हम ऐसी कम से कम तीन मुख्य शक्तियों को देख सकते हैं।

i) समूहों की विविधता, जो भारतीय समाज का गठन करती है।

ii) क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान

iii) जातिवाद

आइए इन शक्तियों में से प्रत्येक पर एक संक्षिप्त नजर डालें।

i) **घटकों की विविधताः** भारत एक विषम समाज है। यह विविध समूहों से बना है। भारतीय राष्ट्र राज्य के लिए पहला संभावित खतरा इस बहुलता में है। भारतीय समाज धर्म, जाति, भाषा और जातीय मूल के संदर्भ में विभाजित था।

ब्रिटिश एक समूह को दूसरे के खिलाफ खड़ा करने की नीति का पालन करके विविध समूहों को नियंत्रित करने में सक्षम थे। लेकिन विभाजनकारी प्रवृतियाँ राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान भी तीव्र रूप से प्रकट हुई, जब भारत से ब्रिटिश शासन को हटाने के लिए अलग–अलग समूह स्पष्ट रूप से संयुक्त थे।

सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है कि भारत में भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का सामना अब भी ऐसी चुनौतियों से होता है कि कैसे अलग–अलग समूहों के हितों को एकीकृत किया जाए। उनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट आकांक्षाएं, इतिहास और जीवन का तरीका है। परस्पर विरोधी समूहों के बीच टकराव को कम करने का प्रयास हमेशा सफल नहीं होता है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, विभाजनकारी प्रवृतियों को सम्मिलित एकीकृत करने के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति के रूप में समाज के समतावादी मॉडल को अपनाया। यह निश्चित रूप से आवश्यक है कि विभाजनकारी प्रवृत्तियों को राष्ट्र राज्य को धमकी देने की अनुमति नहीं दी जाये।

ii) **क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचानः** राष्ट्र निर्माण के कार्य को क्षेत्रवाद से खतरे का सामना भी करना पड़ा है। हम पाते हैं कि हमारे देश में राष्ट्रीय राजनीति अभी भी क्षेत्रीय राष्ट्रीयताओं के उभरने द्वारा चिह्नित है। यह भाषाई आधार पर राज्यों के गठन में काफी स्पष्ट है। यह कुछ क्षेत्रीय पहचानों जैसे गोरखालैंड के लिए गोरखा और नवंबर 2000 से पहले अलग झारखंड राज्य के लिए कुछ आदिवासियों द्वारा मांग से भी स्पष्ट है। लेकिन ऐसे उदाहरण भी हैं कि भारत सरकार ने अलग राज्य के लिए इस तरह की मांगों को स्वीकार किया। झारखंड मुक्ति मोर्चा द्वारा एक अलग राज्य के लिए आंदोलन की शुरूआत 1995 में झारखंड क्षेत्र स्वायत परिषद की स्थापना के लिए की गई थी और आखिरकार नवंवर 2000 (भारत 2003) में पूर्ण राज्य का गठन किया गया।

आपको इसका मतलब यह नहीं निकालना चाहिए कि क्षेत्रीय पहचान पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए। कुछ लोग यह तर्क देना पसंद कर सकते हैं कि क्षेत्रीयवाद अच्छा संकेत नहीं देता है। यह देश के राजनीतिक विघटन का सूचक है। लेकिन जैसा कि राष्ट्र ने पहले भी इस तरह की समस्याओं का सामना किया है, सुलह की प्रक्रिया ने अपनी कक्ष में क्षेत्रीयता को समायोजित करने की अपनी विनम्रता और क्षमता दी है। सामंजस्य की राजनीति राष्ट्रीय ढांचे में विभिन्न समूहों के विविध हितों के बीच सामंजस्य स्थापित करती है।

राष्ट्र राज्य के समेकन के शुरूआती लाभ के बावजूद विविध सांस्कृतिक पहचानों ने खुद को जोर दिया। इसका एक उदाहरण दक्षिणी राज्यों में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का विरोध है। एक और उदाहरण राज्यों के पुनर्गठन की मांग है। अभी तक एक और उदाहरण उनके सदस्यों के जीवन को विनियमित करने के उनके अधिकार के धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा जोर दिया जाना है।

वास्तव में, राष्ट्रीय स्तर की राजनीति ने क्षेत्रीय और संस्कृति पहचान के अस्तिव को मान्यता दी है और केंद्र सरकार ने कानूनी प्रतिबंध भी लगाए हैं। भारत के संविधान ने 1992 में 15 राष्ट्रीय भाषाओं को मान्यता दी। 1992 में एक संविधान संशोधन (71वां संशोधन) के माध्यम से तीन और भाषओं को आठवीं अनुसूची में जोड़ा गया और 18 राष्ट्रीय भाषाओं की सूची बनाई गई। 2003 तक संविधान की आठवीं अनुसूची (भारत 2003) में शामिल 18 राष्ट्रीय भाषाएं हैं। यह प्रत्येक राज्य को क्षेत्रीय भाषा में अपने प्रशासन को चलाने की अनुमति देता है। यह अल्पसंख्यकों की धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करता है। कुछ लोगों को यह अल्पसंख्यकों को विशेष सुरक्षा प्रदान करता प्रतीत हो सकता है। इस विचार को रखने वाले लोगों की संख्या बहुत कम नहीं है। लेकिन फिर अन्य लोग भी हैं, जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा को राष्ट्र के लिए एक प्रमुख लाभ मानते हैं। यह राष्ट्र राज्य को एकजुट रखता है और एक राजनीतिक एकता का निर्माण करता है।

iii) **जातिवादः** राष्ट्रीय राजनीति में जातिवाद के मुद्दों पर सार्वजनिक तौर पर लोगों, विद्वानों और हम लोगों द्वारा बार–बार चर्चा की गई है। जाति भारतीय समाज के अति विशिष्ट संस्थानों में से एक है। राजनीतिक क्षेत्र में इसकी भूमिका हाल ही में उत्पन्न हुई है। यह व्यापक रूप से देखा गया है कि जाति राजनीतिक अभिव्यक्ति के लिए प्रमुख आधार बन गई है। ऐसा मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि जाति लोगों को एक साथ लाने के लिए तंत्र प्रदान करती है। यह एक सफल लोकतांत्रिक राज्य की आवश्यकता भी है। जाति की संस्था का राजनीतिकरण करके, भारत में राजनीतिक प्रक्रिया ने एक अद्वितीय चरित्र ग्रहण किया है। भारत में राजनीतिक दलों का गठन जातिगत गठबंधन के आधार पर किया जाता है और भारतीय मतदाताओं के मतदान व्यवहार को जाति की पहचान के संदर्भ में वर्णित किया जा सकता है।

जैसा कि जातिवाद को एक सामाजिक बुराई माना जाता है और जातिवादी विचारधारा एक समाजवादी समाज के समतावादी मॉडल के साथ ठीक से नहीं चलती है, राष्ट्रीय राजनीति में जाति की भूमिका को एक बुराई के रूप में देखा जाता है। इसे एक ऐसे कारक के रूप में देखा जाता है, जो राष्ट्र निर्माण के कार्य को चुनौती देता है। लोगों को एक साथ आने के लिए वैकल्पिक आधारों के अभाव में; भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में जाति निर्णायक भूमिका निभाती है।

अब तक हमने जो चर्चा की है, उससे यह स्पष्ट होता है कि एक राष्ट्र राज्य बनाने का कार्य आसान नहीं है। एक बढ़ती हुई धारणा यह है कि राष्ट्रीय एकता एक राजनीतिक पहचान प्राप्त करने की कुँजी है। हम अगले भाग में राष्ट्रीय एकीकरण की अवधारणा पर चर्चा करेंगे।

बोध प्रश्न 2

1) राष्ट्र स्तर का निर्माण करने के लिए आर्थिक स्तर पर क्या रणनीति थी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कौनसी तीन प्रमुख ताकतें/शक्तियाँ हैं, जो राष्ट्र निर्माण के प्रयासों को चुनौती देती है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत। प्रत्येक कथन के विरूद्ध सही के लिए टी या गलत के लिए एफ अंकित करें।

क) सामांजस्य की राजनीति में राष्ट्रीय ढांचे में विभिन्न समूहों के विविध हितों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास शामिल है।

ख) भारत में प्रत्येक राजय को अपने प्रशासन को अपनी क्षेत्रीय भाषामें ले जाने का अधिकार नहीं है।

ग) जाति राजनीतिक अभिव्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण आधार है।

10.4 राष्ट्रीय एकीकरण

राष्ट्रीय एकता राष्ट्रीय सामाजिक प्रणाली के विभिन्न भागों को एक समग्र के रूप में विकसित करने की एक प्रक्रिया है। एक एकीकृत समाज, सामाजिक संस्थाओं और उनसे जुड़े मूल्यों में उच्च स्तर की सामाजिक स्वीकृति होती है।

हालाँकि, भाषाईवाद, सांप्रदायिकता, सामाजिक असमानताएं और क्षेत्रीय विषमताएं कुछ ऐसे कारक हैं जो भारत में राष्ट्रीय एकता के विचार को खतरे में डालते है। आइए हम उनमें से प्रत्येक का एक एक करके विश्लेषण करें।

i) **भाषाईवादः** भारत एक बहुल भाषाई राष्ट्र है। भाषा खासकर आजादी के बाद से राजनीतिक अभिव्यक्ति का एक शक्तिशाली स्रोत बन गई है। उदाहरण के लिए,

दक्षिण में विशेष रूप से तमिलनाडु में, राज्य की राजनीति के भीतर सत्ता पाने के लिए लोगों के बीच भाषा से जुड़ी भावनाओं का प्रचार किया गया है।

भाषा की समस्या के दो पहलू है, अर्थात् (i) विद्यालय, महाविद्यालय (स्कूल कॉलेज) और लोक सेवा परीक्षा के स्तर पर शिक्षा का माध्यम, और (ii) गैर हिंदी और हिंदी भाषी कट्टरपंथियों की मांगों को पूरा करना।

पहले पहलू पर प्रतिक्रिया देते हुए, भारत सरकार ने तीन भाषा फार्मूला लागू करने का निर्णय लिया। इसमें शामिल है (a) क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा को पढ़ाना, जब क्षेत्रीय भाषा से अलग हो (b) हिंदी या अन्य भारतीय भाषा हिंदी भाषी क्षेत्र में, और (c) अंग्रेजी या दूसरी आधुनिक युरोपीय भाषा। भारत में संघ लोक सेवा आयोग के लिए आज की परीक्षा हिंदी या अंग्रेजी या देश की किसी भी क्षेत्रीय भाषा में लिखी जा सकती है।

भाषा समस्या के दूसरे पहलू के बारे में, अर्थात् हिंदी और गैर हिंदी भाषी कट्टरपंथियों की मांग, भारत सरकार ने आधिकारिक भाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 पारित किया। इस अधिनियम ने निर्णय लिया कि अंग्रेजी सभी गैर हिंदी भाषी राज्यों के लिए भारतीय संघ की अधिकारिक भाषा बनी रहेगी, जब तक कि ये राज्य स्वयं हिंदी का चयन नहीं करेंगे। (किशोर 1987:41)। उपर्युक्त अधिनियम और तीन भाषा फार्मूले के तहत किए गए प्रावधान ने भाषा के आधार पर संघर्ष की संभावना को कम करने में मदद की है।

ii) **सांप्रदायिकता:** व्यापक रूप से परिभाषित, सांप्रदायिकता किसी भी सामाजिक धार्मिक समूह की प्रवृति को संदर्भित करता है ताकि अन्य समूहों पर अपनी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ताकत को अधिकतम किया जा सके। यह प्रवृत्ति धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के प्रति प्रतिक्रिया करती है जो भारत को बनना है। भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता को किसी भी राज्य संरक्षण के बिना सभी धर्मों के शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के रूप में परिभाषित किया गया है। राज्य सभी के साथ समान व्यवहार करता है। फिर भी, भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राज्य में, हम अक्सर समाजवादी के लक्ष्यों के प्रति सचेत प्रयास करते हुए, भारतीय राष्ट्र राज्य सांप्रदायिक झड़पों से मुक्त नहीं हुआ है। (किशोर 1987:69)।

सोचें और करें 1

जाति, राजनीति के बारे में अखबारों, पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी से आपके द्वारा एकत्रित की गई जानकारी के आधारपर निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान दें।

i) अपने राज्य में प्रमुख राजनीतिक दलों की जाति रचना

ii) पिछले लोक सभा चुनाव में आपके राज्य में जाति कारक की क्या भूमिका थी?

iii) चुनाव अभियान में उठाए गए मुद्दों के संदर्भ में जाति की भूमिका का वर्णन करें।

iii) **सामाजिक असमानताएं:** हर समाज में, सामाजिक संतुष्टि की व्यवस्था है। सामाजिक स्तरीकरण समाज में वस्तुओं सेवाओं, धन, शक्ति, प्रतिष्ठा, कर्तव्यों, अधिकारों, दायित्वों और विशेषाधिकारों के असमान वितरण के आधार पर असमानता को संदर्भित करता है। उदाहरण के लिए सामाजिक विषमताओं को लेते हैं, जो जाति व्यवस्था द्वारा पैदा की गई हैं। वंशानुगत और अंतः विषय प्रणाली होने के नाते,

सामाजिक गतिशीलता की गुंजाइश बहुत कम है। सामाजिक विशेषाधिकार और वित्तीय और शैक्षिक लाभ केवल उच्च जाति समूहों के लिए सुलभ हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया, जैसे कि लोकतांत्रिकरण, पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण ने लोगों की विस्तृत श्रृंखला के लिए विशेषाधिकारों की पहुंच को व्यापक बनाने में मदद की है। आज जाति और राजनीति भी बहुत करीब से जुड़े हुए हैं। शैक्षणिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में अपने सदस्यों के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए पिछड़ी जातियों के लिए विभिन्न आयोगों का गठन किया गया है। यह जाति संबद्धता के राजनीतिकरण का प्रतिबिंब है। जबकि जाति की पहचान पर जोर देने के लिए जनसंख्या के एक आवश्यक हिस्से पर अधिक शोषण और दमित वर्ग के उत्थान के उपायों का राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया पर विघटनकारी प्रभाव पड़ता है।

iv) **क्षेत्रीय असमानता:** भारत के विभिन्न क्षेत्रों के असमान विकास ने राष्ट्रीय एकीकरण के चरित्र को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। असमान विकास स्वतंत्रता के बाद कई सामाजिक आंदोलन का प्रमुख कारण बन गया है। उदाहरण के लिए, झारखंड आंदोलन, जिसमें बिहार, मध्यप्रदेश, बंगाल और उड़ीसा के आदिवासी समूह शामिल थे, ने अन्य मुद्दों के बीच क्षेत्र के पिछड़ेपन पर जोर दिया। एक अलग राज्य की मांग करते हुए इस आंदोलन में शामिल लोगों ने तर्क दिया कि उनके क्षेत्र के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों का दूसरों राज्यों को लाभ पहुँचाने के लिए दोहन किया गया है। भौतिक अभाव के कथित या वास्तविक खतरे से उत्पन्न असंतोष ने लोगों को यह सोचने के लिए प्रेरित किया है कि यदि वे भारतीय संघ के एक राज्य का हिस्सा बने रहे तो उनके क्षेत्र का सामाजिक आर्थिक विकास संभव नहीं है। आखिरकार राष्ट्रीय सरकार ने एक अलग राज्य की अपनी माँग मान ली और नवंबर 2000 में झारखंड, उत्तरांचल और छत्तीसगढ़ तीन नए राज्यों का गठन किया गया। झारखंड के मामले में बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और पश्चिमी बंगाल के जनजातीय क्षेत्र से युक्त राज्य की मांग थी। नए राज्य को बिहार राज्य के कुछ हिस्सों में शामिल किया गया था। सामाजिक आर्थिक विकास के संदर्भ में क्षेत्रीय असमानताएं कई बार संयुक्त राष्ट्र की अवधारणा के लिए खतरा साबित हुई हैं। संक्षेपारांश में, संक्षेप में हम यह कहकर इस खण्ड की व्याख्या कर सकते हैं कि विभिन्न बल शक्तियाँ भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए एक चुनौती पेश करते हैं। सरकार और राष्ट्रीय भवन निर्माण के काम से जुड़े लोगों ने कई राणनीतियों का उपयोग किया है, जैसा कि योजनाबद्ध सामाजिक आर्थिक विकास और शिक्षा और जन संचार का विस्तार और यहाँ तक कि मौजूदा एकीकरण को मजबूत करने और बढ़ावा देने के लिए मौजूदा राज्यों को पुनर्गठित करना।

बोध प्रश्न 3

1) राष्ट्रीय एकीकरण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) वे कौन से कारक हैं, जो भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के आदर्श को खतरे में डालते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत। प्रत्येक कथन के विरूद्ध सही के लिए T या गलत के लिए F चिह्न अंकित करें।

1) स्कूल कॉलेज और लोकसभा परीक्षाओं में शिक्षा के माध्यम की समस्या का जवाब देने के माध्यम से तीन भाषा फार्मूला अपनाया गया।

2) हिंदी आज केवल भारतीय संघ की अधिकारिक भाषा है।

3) भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

10.5 सारांश

इस इकाई में हम राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न पहलूओं पर चर्चा करते हैं। सर्वप्रथम राज्य, राष्ट्र और समाज जैसी अवधारणाएं परिभाषित करेंगे। तब भारतीय राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में हमने भारतीय राष्ट्र राज्य की आपात स्थिति और राष्ट्रीय स्तर पर अपनाई गई रणनीतियों को संक्षेप में उल्लेख किया। हमने उन बलों को भी देखा, जिन्होंने राष्ट्र निर्माण के कार्य को चुनौती दी है। अपने अंतिम खंड में हमने राष्ट्रीय एकता के कार्य से संबंधित मुद्दों को रेखांकित किया, जिसमें हमने कहा, एक अनिवार्य रूप से एक राष्ट्र राज्य के निर्माण की एक प्रक्रिया है।

10.6 शब्दावली

आधिपत्य : बहुसंख्य क्रमें से लोगों के एक छोटे समूह द्वारा सत्ता पर कब्जा।

राष्ट्र : राजनीतिक और सांस्कृतिक समानता के आधार पर खुद को पहचानने वाले लोगों का एक समूह।

राष्ट्र निर्माण : राष्ट्र पहचान के विकास की प्रक्रिया

सुलह की राजनीति : राजनैतिक प्रक्रियाएं जो भिन्न राजनीतिक हितों को समेटती है।

राजनीतिक तंत्र : समाज की वे व्यवस्थाएं, औपचारिक या अनौपचारिक, जो सत्ता पर आधारित होता है और जहाँ आधिकारिक निर्णय होते हैं।

राज्य : प्रादेशिक क्षेत्राधिकार, गैर स्वैच्छिक सदस्यता निश्चित अधिकारों और सदस्यों के कर्तव्यों और शक्ति के वैध उपयोग पर एकाधिकार द्वारा विशेषता एक राजनीतिक संघ।

10.7 उपयोगी पुस्तकें

- किशोर सतेद्र (1987) नेशनल इंट्रीग्रेशन इन इंडियाः स्टरलींग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- कोठारी रंजनी, 1986, पॉलिटिक्स इन इंडिया (फर्स्ट प्रिंटेड इन 1970) ऑरीयंट लांगमैनः नई दिल्ली।
- वालेस, पाऊल एण्ड रामाश्रय, रॉय (संपादक) 2003 इंडिया 1999 इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड टुवंटीथ सेंचुरी पॉलिक्सि सेज पब्लिकेशन नई दिल्ली।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) समाज उन सामाजिक रिश्तों को संदर्भित करता है, जो परस्पर जुड़े हुए है। यह सामाजिक जैसे कि रिश्तेदारी, परिवार, अर्थव्यवस्था, राजनीति और समुदाय और समिति शामिल हैं।

2) एक राष्ट्र उन लोगों के समूहों को संदर्भित करता है, जिन्होंने संस्कृति धर्म, भाषा और राज्य की सामान्य पहचान के आधार पर एकजुटता विकसित की है।

3) एक राज्य एक राजनीतिक संघ को संदर्भित करता है, जो क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र गैर स्वैच्छिक सदस्यता और एक संविधान द्वारा विशेषता है।

बोध प्रश्न 2

1) भारतीय राष्ट्रवाद के उद्‌भव को सुविधाजनक बनाने वाले दो कारक हैं। (क) एक सामान्य शत्रु की उपस्थिति (ख) एकता की संस्कृति की पहचान का अस्तित्व जिसने भारत के एकीकरण को एक राज्य के रूप में देखा।

2) एक संविधान को अपनाने और समाज के एक समाजवादी पैटर्न ने राजनीतिक स्तरों पर एक राष्ट्रीय भवन का निर्माण किया।

3) (a) गलत

   (b) सही

   (c) सही

   (d) गलत

बोध प्रश्न 3

1) पंचवर्षीय योजनाओं में राष्ट्र निर्माण के लिए आर्थिक स्तर पर एक महत्वपूर्ण रणनीति जारी है। योजना आयोग को यह तय करने की जिम्मेदारी दी जाती है कि प्रत्येक राज्य को किन क्षेत्रों में कितनी और किन परियोजनओं को आवंटन करना है। वितरणात्मक न्याय का सिद्धांत वस्तुओं और सेवाओं के वितरण का मार्गदर्शन करता है।

2) तीन मुख्य ताकतें घटक, क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान और जाति की विविधता हैं।

3) (a) सही

(b) गलत

(c) सही

बोध प्रश्न 4

1) राष्ट्रीय एकता राष्ट्रीय सामाजिक प्रणाली के विभिन्न और विविध तत्वों कोको एकीकृत पूरे में एकीकृत करने की एक प्रक्रिया है।

2) भारत में राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खतरे में डालने वाले कारक है। भाषाईवाद, सांप्रदायिकता, सामाजिक असमानताएं और क्षेत्रीय विषमताएं।

3) (a) सही

(b) गलत

(c) सही

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 स्थानीय स्वशासन*

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं

11.3 स्थानीय स्वशासन का महत्व

11.4 73 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992

11.5 74 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992

11.6 भारत में स्थानीय सरकार का फील्ड दृश्य

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 उपयोगी पुस्तकें

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको सक्षम होगें:–

- स्थानीय स्वशासन के अर्थ और विशेषताओं को समझने में ;
- स्थानीय स्वशासन के महत्व का आकलन करने में;
- 73 वें और 74 वें संशोधन के प्रमुख प्रावधानों पर प्रकाश डालने में; और
- स्थानीय स्वशासन के फील्ड दृश्य का वर्णन करने में।

11.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा को महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसे ऐसे तंत्र के रूप में देखा जाता है जो लोकतंत्र की जमीनी स्तर पर कार्य करता है। स्थानीय सरकार में स्वशासन शब्द अधिक स्पष्ट रूप से अपने दैनिक जीवन के कार्यों के निर्वहन में लोगों की भागीदारी की अवधारणा पर जोर देता है। स्थानीय स्वसरकारी केन्द्र के द्वारा एक औपचारिक और कानूनी रूप से निर्धारित तंत्र के तहत केन्द्र या राज्य सरकार केवल स्थानीय स्तर पर कुछ कार्यों को करने की अनुमति देती हैं, विशेष रूप से उन कार्यों को जो नागरिकों के रोजमर्रा के जीवन से अधिक निकटता से संबंधित हैं और जहां राष्ट्रीय सरकार सोच सकती है कि एक ही स्थान पर इन मुद्दों का निवारण करना लोगों को संतुष्टि देता है और दूसरी ओर केन्द्र सरकार को अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए अधिक समय देता है।

* डॉ करूणाकर सिंह द्वारा लिखित।

लॉर्ड ब्रीस के अनुसार, ''ये लोकतंत्र के सबसे अच्छी विचारधाराएँ है और लोकतंत्र की सफलता की सर्वोत्तम प्रतिभूति (gaurantee) है। ''स्थानीय सरकारों को सरकार के तीसरे स्तर के रूप में भी जाना जाता है। इसमें छोटे क्षेत्र या इलाके के लोग उदाहरण के लिए एक गाँव, कस्बें या शहर में अपनी सरकार का चुनाव करते हैं और इसके माध्यम से अपनी दैनिक कार्यों का संचालन करते हैं। भारत में स्थानीय सरकार भारत के संविधान की VII अनुसूची की सूची II में आइटम 5 के रूप में एक राज्य विषय हैं। राजस्थान पहला राज्य था जिसने 1959 में उसके बाद उसी वर्ष आंध्र प्रदेश स्थानीय सरकार को अधिनियमित और अपना लिया था, लेकिन स्थानीय सरकार के माध्यम से इस जमीनी विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया ने 73 वें और 74 वें संशोधन 1992 के साथ गति प्राप्त की। इसके बाद स्थानीय सरकार भारत सरकार की एक संवैधानिक लक्षण बन गई हैं।

11.2 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं

स्थानीय सरकार की आवश्यकता विशेषता निम्नलिखित के रूप में देखी जा सकती हैः

- यह एक स्थानीय क्षेत्र में संचालित होता है।
- इसे वैधानिक दर्जा प्राप्त है।
- वे स्वायत्त निकाय हैं। वे शक्तियों का प्रयोग करने और अपने कार्यों का निर्वहन करने के लिए स्वतंत्र हैं जैसा कि कानून में परिकल्पित हैं।
- यह स्थानीय भागीदारी की विशेषता हैं जो स्थानीय निवासियों के सीधे संपर्क में होने के कारण प्रतिनिधित्व द्वारा उत्तरदायी व्यवहार सुनिश्चित करता है।
- करों और अन्य उपकरणों के माध्यम से धन उन्हें जुटाने की अनुमति है, इसलिए स्थानीय स्तर पर वित्त उपलब्धि इसकी एक और विशेषता है।
- यह लोगों को उनके दरवाजें पर नागरिक सुविधाओं के लिए प्रदान करता है।

11.3 स्थानीय स्वशासन का महत्व

1. यह जमीनी स्तर पर लोकतंत्र प्रदान करता है क्योंकि यह लोगों को अपनी मामलों का प्रबधंन करने का मौका देता है।
2. यह सार्वजनिक संबंध में लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करता है।
3. यह तंत्र स्थानीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अधिक सक्षम है क्योंकि राज्य सरकार अपने बड़े आकार के कारण कुछ ऐसे मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने में सक्षम नहीं हो सकती है जो स्थानीय लोगों के लिए महत्वपूर्ण हो सकते है लेकिन इस तंत्र के माध्यम से स्थानीय समस्याओं और आवश्यकताओं को जांचा जा सकता है। अधिक व्यापक और विस्तृत तरीकें और इस प्रकार समस्या के लिए उपयुक्त प्रतिक्रिया की जा सकती है।
4. यह लोगों को सभी को सेवा प्रदान करने के लिए सामुदायिक सोच की भावना और महत्व को समझने के लिए एक प्रशिक्षण विद्यालय के रूप में कार्य करता हैं। वे आवश्यकताओं की पहचान और वहां संसाधनों के आवंटन में शामिल जटिलताओं को समझते हैं।
5. यह आवश्यकताओं के निवारण के लिए एक किफायती तरीका है। केन्द्र सरकार के

माध्यम से कार्यों के निर्वहन के लिए विस्तृत नौकरशाही मशीनरी की आवश्यकता होगी जो इसके निर्णय लेने और कार्यान्वयन करने की संरचना होगी। यह नौकरशाही सरकारी खजाने के लिए एक लागत होगी जो हमेशा स्थानीय लोगों द्वारा स्थानीय स्तर पर व्यवस्थित नागरिक सुविधाओं की तुलना में बहुत अधिक होगी। आवश्यकताओं के क्रमवीक्षण (scaning) लागत भी कम हो जाती है क्योंकि जो लोग तत्काल संपर्क करते हैं उन्हें हमेशा अपनी समस्याओं के बारे में बेहतर तरह से बताने का ज्ञान होता हैं।

6. समय और लागत में केन्द्र सरकार के बोझ को कम करता हैं।

7. यह लोगों और सरकार के बीच संचार के एक चैनल के रूप में कार्य करता है।

8. प्रवेश और भागीदारी दोनों के रूप में विकास प्रशासन के मामले में बहुत महत्वपूर्ण है।

9. यह समग्र राष्ट्रीय प्रगति के लिए मार्ग बनाता है।

बोध प्रश्न 1

1) स्थानीय स्वशासन से आपका क्या अभिप्राय है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) स्थानीय स्वशासन की चार विशेषाओं पर प्रकाश डालिए ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) स्थानीय स्व-सरकार क्यों महत्वपूर्ण है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992

73वां संशोधन 1992 डी पी एस पी (DPSP) के अनुच्छेद 40 को लागू करता है जिसमें कह गया है कि ''राज्य ग्राम पंचायतों को व्यवस्थित करनें के लिए कदम उठाएंगे और उन्हें ऐसी शक्तियों और अधिकारों के साथ सज्ज करेगें जो उन्हें स्व-सरकार की इकाइयों के रूप में कार्य करने में सक्षम करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं।'' इसने पंचायत प्रणाली को संविधान को न्यायोचित हिस्सा बना दिया है और राज्यों पर पंचायती राज अधिनियमों को लागू करने के लिए संवैधानिक दायित्व डाल दिया है। इसने संविधान में एक नया भाग IX, जोड़ा जिसका शीर्षक ''पंचायतों'' है, जिसमें अनुच्छेद 243 से 243 (0) के प्रावधान शामिल हैं, और पंचायतों के कार्यों के भीतर 29 विषयों को शामिल करते हुए नई अनुसूची में जोड़ा गया है।

73वें सी ए ए की मुख्य विशेषताएं

1. विकेन्द्रीकृत शासन के लिए एक सुविचारित और निर्णायक निकाय के रूप में ग्राम सभा की केन्द्रीयता।

2. देश भर में एक समान त्रि स्तरीय संरचना, गांव, ब्लॉक और जिले के साथ उपयुक्त स्तरों के रूप में लागू। दो मिलियन से कम आबादी वाले राज्यों के पास मध्यवर्ती स्तर को शुरू नहीं करने का विकल्प हैं।

3. सभी स्तरों पर सभी सदस्यों के लिए सभी सीटों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव, इसके अलावा, ग्राम सभाओं (पंचायतों) के अध्यक्षों को मध्यवर्ती स्तर पर परिषदों (पंचायतों) का सदस्य बनाया जा सकता है, और जिला स्तर पर ब्लॉक परिषदों (पंचायतों) के अध्यक्ष सदस्य हो सकते हैं। संसद के सदस्य, विधान सभाओं के सदस्य और विधान परिषदों के सदस्य मध्यवर्ती और जिला स्तरों पर पंचायतों के सदस्य भी हो सकते हैं।

4. सभी पंचायतों में, सीटें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षित है। कुल सीटों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। एस सी और एस टी के लिए आरक्षित एक तिहाई सीटें भी महिलाओं के लिए आरक्षित होगी।

5. सभी स्तरों पर पंचायतों के अध्यक्षों के कार्यालय राज्य में उनकी जनसंख्या के अनुपात में एस सी और एस टी के पक्ष में आरक्षित होगें। सभी स्तरों पर पंचायतों के अध्यक्षों के एक तिहाई कार्यालय भी महिलाओं के लिए आरक्षित होगे।

6. किसी राज्य का विधानमंडल पिछड़े वर्गों के सदस्यों के पक्ष में पंचायतों में अध्यक्षों की सीटों और कार्यालयों का आरक्षण प्रदान कराने के लिए स्वतंत्र हैं।

7. औसत पंचायत में एक कार्यकाल पांच साल का होता है। कार्यकाल समाप्त होने से पहले चुनाव संपन्न करने होते हैं। भंग होने की स्थिति में, चुनाव 6 महीने के भीतर अनिवार्य रूप से होगें। पुनर्गठित पंचायत पाँच वर्ष की अवधि के शेष अवधि के लिए कार्य करेगी।

8. इसकी समाप्ति से पहले किसी भी अधिनियम के संशोधन द्वारा मौजूदा पंचायतों को भंग करना संभव नहीं होगा।

9. राज्य के किसी भी कानून के तहत अयोग्य घोषित किया गया व्यक्ति पंचायत का सदस्य बनने का हकदार नहीं होगा।

10. निर्वाचन प्रक्रिया और निर्वाचन नामावली की तैयारी के नियंत्रण निर्देशन और नियंत्रण के लिए एक स्वतंत्र राज्य चुनाव आयोग की स्थापना की जाएगी।

11. विकास योजनाओं की तैयारी और कार्यान्वयन में राज्य द्वारा शक्तियों और जिम्मेदारियों का विचलन।

12. इन पंचायती राज संस्थानों (पी आर आई) की वित्तीय स्थिति को बढ़ाने और पंचायतों के बीच धन के वितरण पर राज्य को उपयुक्त सिफारिशें करने के लिए 5 साल में एक बार राज्य वित्त आयोग का गठन करना।

बोध प्रश्न 2

1) ग्राम सभा का क्या अभिप्राय है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) 73 वें सी ए ए की किसी भी पाँच विशेषताओं का उल्लेख करें ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) पंचायती राज के आरक्षण प्रावधान को लिखिए ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 74वें संवैधनिक संशोधन अधिनियम 1992

संविधान (74 वां संशोधन) अधिनियम, 1992 ने संविधान में एक नया भाग IX A प्रस्तुत किया है, जो 243 P से 243 ZG के लेख में नगर पालिकाओं के साथ काम करता है। इस संशोधन को नगरपालिका अधिनियम के रूप में भी जाना जाता है जो 1 जून 1993 को लागू हुआ। इसने नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा दिया है और उन्हें संविधान के न्यायोचित अंश के तहत लेकर आया है। राज्यों को व्यवस्था के अनुसार नगरपालिकाओं को अपनाने के लिए संवैधानिक दायित्व के तहत रखा गया था जैसा कि संविधान में निहित था।

74वें सी ए ए की मुख्य विशेषताएं

1. शहरी स्थानीय सरकारी निकायों को संवैधानिक दर्जा दिया गया है। तीन स्तरीय संरचना की परिकल्पना की गई है, जहां बड़े शहरों के लिए नगर निगम, छोटे क्षेत्रों के लिए नगर पालिका, और शहरों में संक्रमण के लिए गाँवों के लिए नगर पंचायतें होंगी। चूंकि, ''स्थानीय सरकार'' एक राज्य का विषय है, इसलिए राज्य विधानसभाओं को उनकी शक्तियों के भीतर शहरी सरकारी संस्थानों की विभिन्न इकाइयों की शक्तियों और कार्यों के विवरण को परिभाषित करने के लिए छोड़ दिया गया है जिनकी विस्तृत रूपरेखा केवल संसद द्वारा तैयार की गई है।

2. जिस प्रकार लोकसभा और राज्य विधानसभा के लिए चुनाव होते हैं, उसी प्रकार लोगों द्वारा नगर निकाय का प्रत्यक्ष चुनाव का प्रावधान किया गया है। चुनाव का उद्देश्य से, नगरपालिका चुनाव राज्य चुनाव आयोग द्वारा कराये जाते है।

3. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं सहित महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों का आरक्षण सुनिश्चित है।

4. राज्य वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तिय व्यवहार्यता सुनिश्चित करेगा। टेक्स, टोल शुल्क और शुल्क अनुदान सहायता के माध्यम से नगर निगम के धन की प्राप्ति होती है।

5. स्व सरकार के शहरी नगर संस्थान का आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के 18 विषयों पर योजनाओं को तैयार करने और लागू करने के लिए शक्ति और अधिकार दिए गए हैं।

6. विकास समितियों जैसे डी पी सी और महानगर योजना समिति का गठन किया गया है। इस प्रकार, भारत में योजना को जमीनी स्तर तक विकेन्द्रीकृत किया गया है।

7. नगरिकों के साथ बेहतर सामीप्य के लिए, बोर्ड समितियों का गठन किया गया है।

8. 74 वें सी ए ए और 73 सी ए ए (पंचायत पर) ने सम्पूर्ण ग्रामीण और शहरी भारत में स्थानीय स्वंय सरकारी संस्थान बनाए हैं, जिसमें शक्तियों के साथ (ग्रामीण के लिए 29 और शहरी के लिए 18) विलंबित, विचलन, जानबूझकर और सरकार के कार्यकारी बिंग बनाए गए, प्राधिकरण और जिम्मेदारियों को परिभाषित किया गया है। विकासात्मक समिति (डी पी सी, एम पी सी) और वित्त आयोग गठित, और प्रत्येक नगर पालिका

के भीतर, वार्ड समितियों और क्षेत्रीय समितियों का गठन किया गया है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु नीचे दिए गए स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) 74 सी ए ए की किसी भी पाँच विशेषताओं का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) 74 वें संशोधन अधिनियम का क्या महत्व है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.6 भारत में स्थानीय सरकार का फील्ड दृश्य (Field view)

विभिन्न अध्ययन भारत के स्थानीय शासन में सत्ता संरचनाओं के भिन्न लेखा–जोखा देते हैं। विद्वानों के एक समूह के अनुसार, सत्ता के वितरण में असमानता जातिगत संबंधों के संदर्भ में संरचित है। उनके विचार में, उच्च कर्मकांडीय प्रस्थिति, भूमि पर अत्यधिक नियंत्रण और अन्य आर्थिक संपति और शिक्षा के अपेक्षाकृत उच्च स्तर जैसे प्रमुख सत्ता संसाधनों के कब्जें के कारण उच्च जातियां सता संरचना पर हावी हैं, (मेयर 1958 श्रीनिवास 1959, लक्ष्मी नारायण 1970 बेयरमेन 1972, कार्टर 1974)। विद्वानों का एक अन्य समूह मानता है कि सिंचाई के विस्तार के माध्यम से कृषि के आधुनिकीकरण के कारण, नकदी फसल की खेती, मशीनीकरण और उच्च उपज वाले फसलों की विविधताओं/किस्मों को अपनाने के कारण, ग्रामीण इलाकों में समृद्व किसानों का एक वर्ग उभरा है जिसने सभी ग्राम स्तर के संस्थानों को अपने नियंत्रण में ले लिया है। (फैंकलिन 1971, दासगुप्ता 1977, बायर 1981) अभी तक एक अन्य समूह ने तर्क दिया है कि शक्ति अब जाति या वर्ग की संरचना से कम नहीं है। सत्ता जाति और वर्ग के मॉडल से भटक गई हैः इसके स्थान पर, यह गाँवों के बाहर की पार्टी के मालिकों और बहुलता पर निर्भर करता है, संरक्षण, संख्यात्मक समर्थन और व्यक्तित्व विशेषताओं की एक विस्तृत प्रणाली में स्थिति हो गई है।

(ओमन 1970 बेरिल 1971) अब इस अवधि के दौरान किसी क्षेत्र या अध्ययनों के क्षेत्रों पर चर्चा करते हैं।

स्थानीय स्तर की राजनीति को कई तत्वों द्वारा विशेषता दी गई है जैसेः जाति, शक्ति, प्रभुत्व, जाति संघर्ष, राजनीतिक भागीदारी, राजनीतिक संग्रहण इत्यादि। विभिन्न विद्वानों ने जमीनी स्तर की राजनीति के विभिन्न आयामों पर विचार किया है। श्रीनिवास (1959) ने ग्रामीण स्तर पर जाति और प्रभुत्व के बीच गतिशील संबंधों के बारे में चर्चा की है। इसके अलावा बेते (1996) ने तमिलनाडू के तंजौर जिले के अपने अध्ययन में ग्राम समाज में जाति, रिवाज, पंरपराओं और वर्चस्व के संबंध को भी प्रस्तुत किया। लोकतात्रिक राजनीति के क्रमिक संस्थानीकरण ने जाति समीकरणों को बदल दिया। सत्ता जाति समूहों के एक समूह, तथाकथित रूप से शुद्ध उच्च जातियों से मध्य स्तर की प्रमुख जातियों में स्थानांतरित हो गई है।

योगेन्द्र सिंह (1969) ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के छह गांवों में सत्ता की संरचना बदलने के बारे में भी चर्चा की है जहाँ 1949 में तहसीलदार द्वारा कार्यकर्त्ताओं के नामांकन के बजाए व्यस्क मताधिकार के आधार पर पंचायतों की स्थापना की गई थी। निचली जाति और वर्ग समूह की भागीदारी संगठित आधार पर सत्ता के लिए बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा को गति मिली है। जाति स्तर पर, यह भागीदारी गुट गठबंधन का रूप लेती है। इसने न केवल ग्राम समुदाय को उपविभाजित किया है, बल्कि ग्राम जीवन में सामाजिक तनाव और असुरक्षा को बढ़ाया है। छह ग्राम समुदायों में राजनीतिक प्रक्रिया के इस संक्षिप्त विवरण को तीन चरणों में संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता हैं।

1. ग्रामीण समुदाय में अपनी शक्ति के लिए विशेष पूर्व मताधिकार (faranchised) विक्रय अधिकार किसान का प्रारंभिक दावा।
2. सत्ता आरोही और पारंपरिक शक्ति वाले अभिजात वर्ग के बीच समूह संघर्ष की लंबी अवधि।
3. सत्ता के क्षेत्र से किसान नेतृत्व का संबंध विच्छेद।

इसी तरह रजनी कोठारी (1970) ने संघर्षरत जातियों और आरोही जातियों के बीच संघर्ष की प्रक्रिया के माध्यम से विभिन्न जातियों के बीच राजनीतिक संघर्ष को दिखाने की कोशिश की। सत्तालिप्त जातियां आमतौर पर सत्ता पर एकाधिकार रखती है, जिससे जल्द ही अपनी ताकत को चुनौती देने वाली एक बढ़ती जाति की द्विपक्षीय प्रतिक्रिया को स्पष्ट करती है। दूसरे चरण में अंतर जाति प्रतियोगिता अंतराजाति प्रतियोगिता को जन्म देती है। तीसरें चरण में पुरानी पहचान कमजोर हो जाती है और धर्मनिरपेक्ष साहचर्य आधार पर व्यक्तियों और समूहों के राजनीतिक एकीकरण के लिए अत्यधिक धर्मनिरपेक्ष मानदंड को प्रतिस्थापित किया जाता है।

एफ जी बेली (1969) ग्रामीण भारत में सभी प्रकार की राजनीति के लिए और सभी राजनीतिक परिस्थितियों में राजनीति के लिए एक मॉडल का सुझाव देती है। उन्होंने उड़ीसा में बिसीपारा नामक गॉव में तीन प्रकार की संघर्ष स्थितियों पर चर्चा की। वे हैं:–

1. गुटों
2. जाति आरोहण
3. जातियों के बीच संघर्ष

वह देखता है कि 'गुट' के लिए उड़िया शब्द 'डोला' है, जिसका अर्थ झुंड या हाथ या राजनीतिक पार्टी का प्रयोग किया गया है। गुटबाजी के लिए, अंग्रेजी शब्द 'पार्टी' भी उपयोग में है जिसमें सहवर्ती अर्थ है। गुटों के बीच संघर्ष को 'डोलाडोली' कहा जाता है। पंचायत में गुटों में आवेशपूर्ण मौखिक हमलों और सम्मान की रक्षा के रूप में टकराव होते हैं। बेली के अनुसार गुट के नेता जातियों के नेता होते हैं जो निचली जाति के सदस्यों की भर्ती करते हैं। इसके अलावा, उन्होनें जाति आरोहण और जाति संघर्ष पर चर्चा की। जाति आरोहण में एक ही दिए गए मानदंड और व्यवहारिक नियमों के तहत प्रतियोगिता संचालित होती है, लेकिन जाति संघर्षों में, जबकि लक्ष्यों के बारे में प्रामाणिक समझौता होता है, मानक या व्यावहारिक स्तर पर स्वीकार्य रणनीति के बारे में कोई समझौता नहीं होता है। बेली के लिए सामाजिक संघर्ष प्रातियोगियों के बीच संचार की एक प्रक्रिया है जिसमें वे न केवल प्रतीकात्मक कार्रवाई के अर्थ के बारे में, बल्कि अनुमेय रणनीति के बारे में भी सहमत होते हैं।

विद्वानों के इन तीन समूहों पर किये गये अध्ययन ज्यादातर पंचायती राज व्यवस्था की शुरूआत के प्रारंभिक चरण में किए गए अध्ययनों पर आधारित है, उस समय पंचायती राज में अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाओं के सदस्य को शामिल करने के लिए कोई प्रावधान नहीं था। निकायों, ग्रामीण समाज में अपनी हीन स्थिति को देखते हुए इन बहिष्कृत समूहों के सदस्य स्थानीय निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भाग लेने में सक्षम नहीं थे।

सहभागी जमीनी स्तर के लोकतंत्र को स्थापित करने के लिए, पंचायत राज का पुनर्गठन 1993 में 73 वे संवैधानिक संशोधन के माध्यम से किया गया था, जिसने अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाओं के सदस्यों को उनके लिए एक निश्चित प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान कर समावेश किया गया। 2017 तक कुल 267,428 स्थानीय सरकारी निकाय है। पंचायत के सभी स्तरों पर लगभग 3 मिलीयन निर्वाचित प्रतिनिधि हैं, जिनमें से आधी महिलाएँ हैं। भारत का संविधान पंचायतों को स्वशासन के संस्थानों के रूप में देखता हैं। हालाँकि, भारत की राजव्यवस्था के संघीय ढाँचे को ध्यान में रखतें हुए, पंचायतों को दी जाने वाली अधिकांश वित्तीय शक्तियाँ और प्राधिकरण संबंधित राज्य विधानसभाओं के विवक पर छोड़ दिए गए है। इसके परिणामस्वरूप पी आर आई द्वारा प्रदत्त शक्तियां और प्रकार्य एक राज्य से दूसरे राज्य में अलग होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्थानीय सरकार ने देश के लिए एक उत्तरदायी, पारदर्शी, जवाबदेही और भागीदारी प्रणाली बनाई है, लेकिन यह धन, कार्यों और कार्यवाहियों, की कमी जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना करती है। यद्यपि 73 वां और 74 वां संशोधन भारत के संविधान में अनुसूची 11 और 12 में उल्लिखित कार्य के क्षेत्र के लिए व्यापक सूची प्रदान करते है।

ग्रामीण स्थानीय निकायों में बहिष्कृत समूहों ने उनके शक्तिकरण में योगदान दिया है और विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के प्रभुत्व को प्रभावित किया है। हालाँकि प्रांरभिक अध्ययनों ने संकेत दिया है कि इस बहिष्कृत समूहों से संबंधित निर्वाचित सदस्य केवल नाम के प्रतिनिधि हैं, विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के प्रभुत्व के कारण वे शासन में प्रभावी रूप से भाग लेने में असमर्थ हैं। (लिटीन और श्रीवास्तव 1999, मैथ्यू और मंयक 1996) बेशक, सफलता की कहानियाँ भी मौजूद हैं। (लिटीन 1996 पाई 2000)।

अब ग्रामीण अर्थव्यवस्था पतन की ओर है। यह विकासात्मक राज्य मशीनरी के विस्तार के कारण हुआ है। इसका मतलब है कि राजनीतिक कार्यालयों, बैंक संपर्क या क्रेडिट सहकारी सोसायटी कार्यालयों से आने वाले प्राधिकरण का एक नया आधार सामने आया

है। (प्राइस 2006) बिचौलियों की भूमिकाओं के एक समूह द्वारा विकासात्मक मशीनरी के विस्तार ने भी 'गेट कीपिंग एक्टिविटीज' के लिए जगह खोली हैं, जिसमें वे अन्य लोगों के बीच मध्यस्थता करते हैं। (हेरिस 2013) जैसा कि प्राइज (2006, पष्ठ 315) प्रकाश डालते हैं 'एक नए प्रकार का नेतृत्व उभरा है, जिसे अपनी वैधता, विरासत में मिली भूमि, की प्रस्थिति नहीं, बल्कि समस्या को सुलझाने में गांवों की सहायता करके पाई है, जिसे लोग 'अच्छा काम' कहते हैं। विभिन्न रूप से एक 'पैरवीकार' (रेडी और हरगोपाल 1985) 'राजनीतिक उद्यमी' (जोधका, 2012), 'मुफसिल नेताजी' (ठाकुर, 2009) और 'नये नेताजी' (कष्ण 2003) कहलाने वाले ये नए नायक ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभुत्व के नए स्त्रोतों को अपनातें हैं। जाति और वर्गों में बढ़ते शिक्षा स्तर ने निम्न वर्गों को इन राजनीतिक उद्यमियों (कष्ण 2003) की भूमिका में कदम रखने में सक्षम बनाया है, हांलाकि उनमें से अधिकांश अभी भी उच्च और प्रमुख जाति समूहों से संबंधित हैं। (जेफरी 2001, जोधका 2012)

प्रभुत्व के नए रूपों का पुनर्उत्पादन होने के बाद प्रभुत्व का पांरपरिक स्त्रोत समाप्त नहीं हुआ है। जाति और अन्य सामाजिक संस्थाओं की भूमिका प्रारंभिक आर्थिक (पूंजी और आय सहित), सामाजिक (नेटवर्क और संबंध) और सांस्कृतिक पूंजी (शिक्षा, विश्वसनीयता और क्षमता के लिए अधिग्रहीत पहचान) की भूमिका निभा रहीं है ताकि ग्रामीण प्रभुत्वों के शहरी संक्रमण को सुविधाजनक बनाया जा सके। यह भी देखा जाता है कि जाति ने केवल अपनी भूमिका को बदल दिया, जबकि व्यवसायिक अवसरों का जातिगत स्तरीकरण दुर्बल हो गया है। (हेरिस बाईट 2016) इसने संभ्रांत वर्गों के आधिपत्य को सुनिश्चित करने के लिए वैचारिक उपकरण प्रदान किए, जो यह सुनिश्चित करते है कि साझा आदर्शों और मूल्यों के माध्यम से अभिजात वर्ग के बौद्विक और नैतिक नेतृत्व को स्वेच्छा से स्वीकार किया जाए। (आई बी आई डी) इसने वर्ग चेतना के लिए जाति चेतना की भी मदद की। (आई बी आई डी पृष्ठ 101) इस प्रकार, इसने पहचान की राजनीति का समर्थन किया जो पूंजीपति और उपवर्ग वर्गों के विभिन्न क्षेत्रों को मजबूत करती है, जिससे जाति को ग्रामीण क्षेत्र के बाहर अपना प्रभाव बढ़ाने में मदद मिलती है। (जेफरी 2001) अभी भी पहचान के रूप में कृषि के आर्थिक स्त्रोंतों में गिरावट के बाद भी महत्वपूर्ण बनी हुई हैं।

बोध प्रश्न 4

1) स्थानीय सरकार को किन वित्तीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) स्थानीय सरकार के कार्मिक प्रणाली में सुधार के लिए सुझाव दे ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) आप भारत में स्थानीय सरकार की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन कैसे करते है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.7 सारांश

इस इकाई से हमने जाना कि स्थानीय स्वशासन हमारे देश के सबसे नवेष्णात्मक शासन परिवर्तन प्रक्रिया है। यह प्रावधान प्रतिनिधि और प्रत्यक्ष लोकतंत्र को एक तालमेल में जोड़ते हैं और उम्मीद है कि भारत में लोकतंत्र का विस्तार और गहरा होगा। एक देश की सरकार का जमीनी स्तर को हाथों में लेने का नेक विचार वास्तव में प्रशंसनीय है। भारतीय स्वतंत्रता के आगमन के साथ स्थानीय स्वशासन का महत्व और अधिक बढ़ गया है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे न केवल नागरिकों की सुरक्षा और सुविधा के लिए बुनियादी नागरिक सुविधाओं को प्रदान करें, बल्कि कल्याण के विभिन्न कार्यक्रमों कें कार्यान्वयन और निर्णय लेने और शासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी के लिए स्थानीय सहायता और सार्वजनिक सहयोग भी जुटाता है।

11.8 शब्दावली

- **स्थानीय सरकार :** यह एक प्रतिबंधित क्षेत्र के भीतर उपायों को निर्धारित करने की दिशा में एक प्रवृत्ति है जो संगठन के सबसे कम भौगोलिक या सामाजिक स्तर पर संगठन के सबसे कम भौगोलिक या सामाजिक स्तर पर संगठन के रूप में निर्णय लेने वाले प्राधिकरण के रूप में बदल जाता है।

- **राजनीतिक भागीदारी :** राजनीतिक भागीदारी में गतिविधियों की एक बोर्ड श्रेणी शामिल है, जिसके माध्यम से लोग विकसित होते हैं और दुनिया पर अपनी राय व्यक्त

करते हैं और यह कैसे संचालित होता है, और उन निर्णयों को लेने और उनके जीवन को प्रभावित करने वाले हिस्सों को आकार देने की कोशिश करते हैं।

- **ग्राम पंचायत :** एक ग्राम पंचायत या गाँव पंचायत भारत में गाँव या छोटे शहर के स्तर पर पंचायती राज की औपचारिक स्थानीय स्वशासन प्रणाली का एकमात्र जमीनी स्तर है, इसके निर्वाचित प्रमुख के रूप में एक सरंपच होता है।
- **नगर पालिका :** एक नगरपालिका आमतौर पर एक एकल स्वशासन या अधिकार क्षेत्र की शक्तियां होती है जैसाकि राष्ट्रीय और क्षेत्रीय कानूनों द्वारा प्रदत्त होता है।

11.9 उपयोगी पुस्तकें

1. अरोड़ा, आर के, गोयल, आर (1995), इंडियन पब्लिक एडमिस्ट्रेशन, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली
2. अवस्थी, ए सी (1982) (संपादक), मियुनसिपल एडमिस्ट्रेशन इन इंडिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशनः आगरा
3. बेली, एफ जी (1969), ''पेरा पॉलिटिकल सिस्टम'' मॉर्क जे स्वतज (संपादक) लोकल लेवल पॉलिटिक्सः सोशल एण्ड कलचरल परस्पेक्टीव, लंदनः युनीवर्सीटी ऑफ लंदन प्रेस।
4. बेते एंडरे (1996), कॉस्ट, क्लास एण्ड पॉवरः चेनचींग पेर्टन ऑफ स्टार्टीफिकेशन इन तंजोर विलेज, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड युनीवर्सिटी प्रेस।
5. दत्ता ए (1984), मयुनसिपल फाइनेंनस इन इंडिया, आई सी पी ए, नई दिल्ली।
6. कोठारी रजनी (संपादक) (1970), कॉस्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, नई दिल्लीः ओरिएंट लोंगमैन।
7. प्रदीप सचदेवा, (1993) अर्बन लोकल गर्वमेंट एण्ड एडमिस्ट्रेशन इन इंडिया इलाहाबादः किताब महल।
8. एस आर महेशवरी (1997), लोकल गर्वमेंट इन इंडिया, आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशनस।
9. शर्मा एम पी (1995) लोकल सेल्फ गर्वमेंट इन इंडिया, किताब महलः इलाहाबाद
10. सिंह, योगेन्द्र (1969), ''द चेनजिंग पॉवर स्टकचर ऑफ विलेज कम्युनीटी ए केस स्टडी ऑफ सिक्स विलेज इन इस्टन यूपी, ''इन ए आर देसाई (संपादक) रूरल सोसायोलॉजी इन इंडिया, मुम्बईः पोपुलर प्रकाशन।
11. श्रीनीवास, एम एन (1959), ''द डोमिनेंट कॉस्ट इन रामपुर'' अमेरीकन एनथ्रोपॉलिजीस्ट, 61: 1–16

11.10 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. किसी भी समाज में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा को महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसे उस तंत्र के रूप में देखा जाता है जो लोकतंत्र का जमीनी स्तर पर ले

जा रहा है। स्थानीय शासन को समाज के सबसे निचले स्तरों पर संचालित किया जाता है।

2. चार विशेषताएं:

- यह एक स्थानीय क्षेत्र में संचालित होता है।
- यह वैधानिक स्थिति का आंनद लेता है।
- वे स्वायत्त निकाय है। वे अपनी शक्तियों का प्रयोग करने और अपने कार्यों का निर्वहन करने के लिए कानून में परिकल्पित हैं।
- यह स्थानीय भागीदारी की विशेषता है जो स्थानीय लोक निर्णय लेने और प्रशासन में शामिल होते हैं।

3. यह जमीनी स्तर पर लोकतंत्र प्रदान करता है क्योंकि यह लोगों को अपने मामलों का प्रबंधन करने का मौका देता है। यह सार्वजनिक मामलों में लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करता है। यह तंत्र स्थानीय समस्याओं को हल करने के लिए अधिक सक्षम है क्योंकि राज्य सरकार अपने बड़े आकार के कारण कुछ मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने में सक्षम नहीं हो सकती है जो स्थानीय लोगों के लिए महत्वपूर्ण हो सकते है लेकिन इस तंत्र के माध्यम से स्थानीय समस्याओं को अधिक व्यापक और विस्तृत तरीके से स्कैन किया जा सकता है। इस प्रकार समस्या की आवश्यकता के लिए उपयुक्त प्रतिक्रिया हुई

बोध प्रश्न 2

1. ग्राम सभा का अर्थ है एक निकाय जिसमें सभी व्यक्ति होते है, जिनका नाम ग्राम स्तर पर पंचायत के लिए मतदाता सूची में शामिल होता है। यह शब्द भारत के संविधान में अनुच्छेद 243 (बी) के तहत परिभाषित किया गया है।

2. 73वें सी ए ए की पांच मुख्य विशेषताएं

1) गाँव सभा (ग्राम सभा) की केन्द्रीयता, विकेन्द्रीकृत शासन के लिए एक सुविचारित और निर्णायक निकाय के रूप में।

2) एक समान तीन स्तरीय देश भर में संरचना, गांव, ब्लॉक और जिले के साथ उपयुक्त स्तरों के रूप में।

3) सभी स्तरों पर सभी सदस्यों के लिए सभी सीटों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव।

4) औसत पंचायत में एक समान पांच साल का कार्यकाल होता है।

5) मतदाता प्रक्रिया और निर्वाचक नामावली की तैयारी के नियंत्रण, निर्देशन, और नियंत्रण के लिए एक स्वंतत्र राज्य चुनाव आयोग की स्थापना की जाएगी।

3. सभी पंचायतों में, सीटे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षित हैं। कुल सीटों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। एस सी और एस टी के लिए आरक्षित सीट का एक तिहाई हिस्सा महिलाओं के लिए भी आरक्षित होगा। इसके अलावा, सभी स्तरों पर पंचायतों के अध्यक्षों के कार्यालय राज्य में उनकी जनसंख्या के अनुपात में एस सी और एस टी के पक्ष में आरक्षित होगें। सभी स्तरों पर पंचायतों के अध्यक्षों के एक तिहाई कार्यालय

भी महिलाओं के लिए आरक्षित होगें।

बोध प्रश्न 3

1. 74 सी ए ए की पाँच मुख्य विशेषताएं

1) शहरी स्थानीय सरकारी निकायों को संवैधानिक दर्जा दिया गया है।

2) इन नगर निकाय का प्रत्यक्ष चुनाव लोगों द्वारा किया गया है क्योंकि चुनाव लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए होते हैं। चुनाव के उद्देश्य से, राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा नगरपालिका चुनाव कराए जाने हैं।

3) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटां का आरक्षण सुनिश्चित है।

4) राज्य वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय व्यवहार्यता सुनिश्चित करेगा। नगरपालिका निधियों को करों, टोलों, कर्तव्यों और शुल्क, सहायता में अनुदान के माध्यम से संदर्भित किया गया है।

5) स्थानीय सरकार के शहरी नगर संस्थानों को 18 विषयों पर आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करने और लागू करने के लिए शक्ति और अधिकार के साथ सम्पन्न किया गया है।

2. शहरी स्थानीय सरकार को 74 वें सी ए ए द्वारा बहुत अधिक सशक्त बनाया गया है। इसने निर्णय लेने की क्षमता, राजस्व के सृजन और व्यय के मामले में स्वतंत्रता के क्षेत्र में अपने ग्रामीण समकक्ष से बेहतर प्रदर्शन किया है। 74 वें संशोधन के मुख्य आकर्षण यह है कि इन स्थानीय निकायों को निर्देशित करने के लिए यू एल जी के निर्णयों की आवश्यकता है, सदस्यों के बीच आरक्षण का एक उदाहरण है, जिला योजना समिति और बोर्ड समिति पर महानगरीय (मेट्रोपॉटिन) होने की आवश्यकता होगी। मूल रूप से हमारे पास सर्वोच्च स्तर पर सीधे बोर्ड स्तर पर नागरिक भागीदारी से कुछ है, ऐसे प्रतिष्ठानों की प्रगति होती है जो वर्तमान में चुनाव आयोग, वित्त आयोग, स्थानीय निकायों के लिए व्यवस्था के साथ उत्तम संगठन बनाए जाते हैं।

बोध प्रश्न 4

1. स्थानीय निकायों द्वारा सामना की जाने वाली सबसे आम समस्या में से एक वित्त और धन की कमी है। स्थानीय सरकार के पास राज्य और केन्द्र के अनुदान को छोड़कर राजस्व का कोई स्त्रोत नहीं हैं, जिसके पास आवश्यकता के बजाय राजनीतिक आधार है। स्थानीय सरकार को स्थानीय लोगों से कर एकत्र करने की अनुमति है, लेकिन अपर्याप्त जनशक्ति के कारण, डिजिटलीकरण और जागरूकता की कमी के कारण वे कर जमा करने और राजस्व उत्पन्न करने में विफल रहते हैं। जब उनके कार्यों की तुलना की जाती है, तो उनकी आय के स्त्रोत महत्वपूर्ण होता है।

2. स्थानीय सरकार उनके साथ काम करने के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित करने में असमर्थ हैं। नागरिक कार्यकर्त्ता सामान्य आबादी की सेवा करने के लिए प्रशिक्षित नहीं हैं। विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार के कार्यबल ढांचे मौजूद हैं। यहाँ तक कि एकल राज्य में, ओवरलैपिंग वर्क फोर्स फ्रेसवर्क की सहमति है, विभिन्न नियंत्रण के लिए जिम्मेदार एसोसिएशन के अंदर और बाहर केन्द्रित है। स्थानीय सरकार में विशेष रूप से कुछ कार्यों के लिए प्रशिक्षित पेशेवरों की सख्त आवश्यकता

हैं, जिन्हें शहरी नियोजन आदि जैसे कौशल और दृष्टि का प्रषिक्षण प्राप्त हो। यदि स्थानीय सरकारी कर्मचारियों का एक विशेष कैडर है और इसे बेहतर सेवा शर्तों और प्रशिक्षण के साथ प्रदान किया जाता है, तो स्थानीय सेवा वितरण को महान पूर्णता तक बढ़ाया जा सकता है।

3. स्थानीय स्वशासन हमारे देश के सबसे नवीन शासन परिवर्तन प्रक्रिया में से एक है। ये प्रावधान प्रतिनिधि और प्रत्यक्ष लोकतंत्र को एक कड़ी में जोड़तें है और उम्मीद की जाती है कि इसका विस्तार और भारत में लोकतंत्र पर निर्भर करेगा। किसी देश की सरकार को जमीनी स्तर के हाथों में लेने का महान विचार वास्तव में सराहनीय है। भारतीय स्वतंत्रता के आगमन के साथ स्थानीय स्वशासन का महत्व और अधिक बढ़ गया है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे नागरिकों की सुरक्षा और सुविधा के लिए न केवल आधारभूत नागरिक सुविधाओं को प्रदान करें बल्कि कल्याण के विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए स्थानीय समर्थन और सार्वजनिक सहयोग भी जुटाएं। हालॉकि दुनिया की किसी भी प्रणाली की तरह, यह प्रणाली भी अपूर्ण है। प्रशासन और धन की हेराफेरी की समस्या आवर्ती है। लेकिन यह कुशल शासन के रास्तें में नहीं खड़ा होगा और अगर इन कुप्रथाओं को जड से खत्म कर दिया जाए, तो दुनिया भर में हमारी स्थानीय स्वशासन प्रणाली की कोई तुलना नहीं होगी।

अन्य पुस्तकें

- बेली, एफ जी (1969), ''पेरा पॉलिटिकल सिस्टम'', मॉर्क जे स्वतज (संपादक) लोकल लेवल पॉलिटिक्सः सोशल एण्ड कलचरल परस्पेक्टीव, लंदनः युनीवर्सीटी ऑफ लंदन प्रेस
- बेते एंडरे (1996), कॉस्ट, कलास एण्ड पावरः चेनजींग पेर्टन ऑफ स्टार्टीफिकेशन इन तंजोर विलेज, नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड युनीवर्सीटी प्रेस।

इकाई 12 सामाजिक आंदोलन और प्रतिरोध*

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सामाजिक आंदोलन

12.2.1 सामाजिक आंदोलन की परिभाषा

12.2.2 सामाजिक आंदोलन का अध्ययन

12.3 प्रतिरोध

12.3.1 ''रणनीति'' के रूप में प्रतिरोध

12.3.2 प्रतिरोध के ''प्रतिआंदोलन'' के रूप में

12.3.3 प्रतिरोध ''प्रति अधिपत्य'' के रूप में

12.3.4 प्रतिरोध ''आधारिक राजनीति'' के रूप में

12.4 सारांश

12.5 शब्दावली

12.6 उपयोगी पुस्तकें

12.7 बोध प्रश्न के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- सामाजिक आंदोलनों के अर्थ को समझेंगे;
- विभिन्न सामाजिक आंदोलन अध्ययनों के महत्व की जाँच कर पाएंगे;
- प्रतिरोध का अर्थ समझ पाएंगे;
- ''प्रतिरोध'' शब्द को प्रासंगिक और अवधारणात्मक बनाना;
- सामाजिक आंदोलन और प्रतिरोध के बीच अंतराफलक को समझेंगे।

12.1 प्रस्तावना

इस खण्ड की पिछली इकाई में हमने स्थानीय स्वशासन के बारे में चर्चा की। इस इकाई में हम सामाजिक आंदोलनों और प्रतिरोध के बीच की कड़ी पर चर्चा करेंगे। हम तब परिभाषित करेंगे कि एक सामाजिक आंदोलन और विभिन्न सामाजिक आंदोलनों के अध्ययनों का क्या महत्व है। यहाँ हम सामाजिक आंदोलनों और प्रतिरोध के बीच प्रतिरोध और अंतराफलक (interface) पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

* डॉ करूणाकर सिंह द्वारा लिखित।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

सामाजिक आंदोलनों और प्रतिरोध की अवधारणाएं कुछ संघर्ष की अवधारणाओं, स्थायी चुनौतियों और दावों के आसपास एक मुख्य सार रखती हैं। प्रतिरोध के विपरीत, जो व्यक्तियों के छिटपुट हस्तक्षेपों को शामिल कर सकता है, सामाजिक आंदोलनों से सामूहिक पहल होती है। इसके अलावा, ''प्रतिरोध'' एक गतिविधि को संदर्भित करता है, जबकि ''आंदोलन'' शब्द पारंपरिक रूप से एक सामाजिक रूप या इकाई को संदर्भित करता है। एक आंदोलन प्रदत्त नहीं होता है बल्कि कुछ ऐसा है जो अर्जित किया जाता है; जबकि व्यवस्था या प्राधिकरण की संरचनाओं के लिए चुनौती के रूप में समझे जाने वाले प्रतिरोध को सामाजिक आंदोलनों का गठन करने वाली मुख्य अवधारणा माना जा सकता है। अतिरिक्त स्थितियाँ जो प्रतिरोध को सामाजिक आंदोलनों में बदल सकती हैं, वे हैं: (क) एक प्रकार की ''सामूहिकता'' जो व्यक्तियों के बीच कुछ समन्वय या संगठन रखती है, और सामूहिक पहचान, (ख) चुनौती का सामना करने की कुछ अस्थायी निरंतरता, (ग) उनकी मुख्य रूप से गैर संस्थागत प्रकृति (मेलुकी, 1989, डेला पोर्ता एण्ड दीयानी, 2006)

आइए हम सामाजिक आंदोलनों पर चर्चा करते हैं।

12.2 सामाजिक आंदोलन

इस खंड में हम सामाजिक आंदोलनो की मुख्य विषेशताओं का वर्णन करेंगे। हम सामाजिक आंदोलन की परिभाषा, उदाहरण, प्रकार और कार्य बताएंगे।

12.2.1 परिभाषा

द इंटरनेशनल एनसाइकलोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज (1972) की परिभाषा के अनुसार सामाजिक आंदोलन परिवर्तन लाने के सामूहिक प्रयासों का एक प्रकार है। कुछ सामाजिक संस्थानों में बदलाव लाने और पूरी तरह से नए सामाजिक व्यवस्था बनाने के उद्देश्य के प्रयास भी हो सकता है। ये भी हो सकता है कि प्रयास सामाजिक व्यवस्था के कुछ पहलुओं में बदलाव के लिए सामाजिक रूप से साझा मांग का प्रतिनिधित्व करें। टर्नर और किल्हन सामाजिक आंदोलन को ''सामूहिकता के रूप में परिभाषित करते है, जो समाज या समूह में परिवर्तन को प्रोत्साहित करने या अवरूद्ध करने के लिए निरंतरता के साथ कार्य करती है, जिसका यह स्वयं एक हिस्सा है। (मैक्लॉघन 1969:27 द्वारा उद्धृत)। टोख (1965) इस बात पर जोर दिया है कि सामाजिक आंदोलन बहुत सारे लोगों द्वारा साझी समस्या को सामूहिक रूप से हल करने का प्रयास है।

ये सभी उपरोक्त परिभाषाएं, एक सामाजिक आंदोलन की दो प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। सर्वप्रथम, सामाजिक आंदोलन में व्यक्तियों के लघु समूह क्रिया न होकर सामूहिक क्रिया होती है। दूसरे, सामूहिक प्रयास को उस समाज में परिवर्तन को प्रोत्साहित करना या अवरुद्ध करने के लिए किया जाता है। अतः सामाजिक व्यवस्था के समस्त या कुछ पहलुओं को बदलने, प्रारंभ करने, विस्थापित करने या पुनर्स्थापन करने के लिए सामूहिक प्रयास किया जा सकता है।

आइए हम दोनों विशेषताओं को थोड़ा और विस्तार से देखें ताकि यह समझ सकें कि सामाजिक आंदोलन भी जैसे अन्य प्रकार के सामूहिक व्यवहार से कैसे भिन्न हैं? हम सामाजिक आंदोलनों और अन्य आंदोलनों जैसे कि सहकारी आंदोलन या एक व्यापार संघ ट्रेड यूनियन आंदोलन के बीच के अंतर को भी देखेंगे।

सामाजिक आंदोलनों में लोगों द्वारा सामूहिक क्रिया शामिल है। सामूहिक क्रिया के किसी भी रूप को सामाजिक आंदोलनों के रूप में उपनाम/चिन्हक (Label) नहीं दिया जा

सकता है, भले ही यह मौजूदा सामाजिक मूल्यों को बदलने की दिशा में निर्देशित हो। उदाहरण के लिए, कुछ स्थानों पर जब एक कार या ट्रक पैदल यात्री से टकराती है तो एक भीड़ तुरंत इकट्ठा हो जाती है और चालक को पीटना शुरू कर देती है। भीड़ को उकसाया जाता है क्योंकि चालक के कार्यों से चोट या जान का नुकसान हुआ है। इसलिए इसे सामूहिक क्रिया में माना जा सकता है जिसे अंधाधुंध गाड़ी चलाने को रोका जा सके और मानव जीवन को बचाया जा सके। लेकिन क्या हम इसे सामाजिक आंदोलन कह सकते हैं? नहीं, क्योंकि यह सिर्फ एक आवेगशील उदगार है। इसलिए, सामाजिक आंदोलन की एक विशेषता यह है कि यह निरंतर होना चाहिए और छिटपुट नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार सामाजिक आंदोलन एक दीर्घकालिक सामूहिकता होकर भी भीड़ से अलग होता है, एक त्वरित सहज समूहन नहीं। हालांकि सामाजिक आंदोलन के परिणामस्वरूप भीड़ बढ़ सकती है। एक महिला संगठन के सदस्यों द्वारा लिया गया मोर्चा, महिलाओं के सामाजिक आंदोलन की एक भीड़ को आकर्षित कर सकता है।

इसी समय में, यह भी ध्यान रखना होगा कि सामाजिक आंदोलन समाज में अन्य आंदोलनो से अलग है। उदाहरण के लिए, सहकारी आंदोलन या ट्रेड यूनियन आंदोलन है, जिससे हम सभी परिचित हैं इन दोनों आंदोलनों में वो लक्षण हैं, जो उपरोक्त चर्चित आंदोलनों में भी पाये जाते हैं, के लिए आम है। जैसा कि वे मौजूदा सामाजिक संबंधों को बदलने का प्रयास करते है और परिवर्तन प्रोत्साहित करने का प्रयास करते हैं। वे सतत आंदोलन हैं क्योंकि वे एक निर्धारित समय अवधि के लिए अस्तित्व में रहे हैं। हालांकि, उनकी एक विशेषता है जो उन्हें सामाजिक आंदोलनों से बाहर रखती है। ये आंदोलन संस्थागत आंदोलन हैं। इससे हमारा मतलब है कि व्यापार संघ (ट्रेड यूनियनो), सहकारिता या ऐसे अन्य संगठन नियमों के एक निर्धारित समूह के तहत कार्य करते हैं। इनमें भर्ती और उसके बाद की प्रक्रिया निष्कासन, बहिष्करण और दंड शामिल हैं। इन संगठनों की सदस्यता सभी के लिए खुली नहीं है। वास्तव में सदस्यता उन लोगों के लिए भी खुली नहीं हो सकती है, इस आंदोलन में भागीदार होने की उम्मीद रखती है। इसे हम स्पष्ट करते हैं। एक (ट्रेड यूनियन) से अपेक्षा की जाती है कि वह श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा और उनकी सुरक्षा के लिए संघर्ष करेगा। लेकिन सभी श्रमिक अपने आप (ट्रेड यूनियन) के सदस्य नहीं बन जाते हैं। वे तभी सदस्य बन सकते हैं जब वे ट्रेड यूनियन के उद्देश्यों से सहमत हों और औपचारिक रूप से सदस्य के रूप में नामांकन करें। इसी प्रकार एक सहकारी जिससे गरीब किसानों की मदद करने की अपेक्षा की जाती है, वह स्वचालित रूप से ऐसे सभी लोगों को अपने सदस्यों के रूप में शामिल नहीं करेगा। कुछ औपचारिकताएं पूरी करनी है जैसे कि सदस्या का पंजीकरण, शेयरों की खरीद इत्यादि। इसलिए इन संगठनों के पास सदस्यता के लिए नियमों की एक व्यवस्था (set) है। केवल वे ही लोग सदस्यता प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं जो इन नियमों को स्वीकार करते हैं तथा इन नियमों का पालन करते हैं। नियमों का पालन न करने पर सदस्यों को उनकी सदस्यता से निष्कासित या निलंबित किया जा सकता है।

एक आंदोलन, जो उपरोक्त तरीके से संस्थागत है, एक निश्चित संरचना और एक पदानुक्रम के साथ कार्य कर सकता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे संगठनों की संरचना नहीं बदल सकती है। एक ट्रेड यूनियन का आधार पदानुक्रम होता है। एक अध्यक्ष, सचिव और समिति के सदस्य आदि होंगे। उनमें से प्रत्येक की अलग–अलग जिम्मेदारियाँ होती हैं और वे अलग–अलग अधिकार रखते हैं। किसी भी संस्थागत आंदोलन के लिए इस प्रकार का पदानुक्रम आवश्यक है। वस्तुतः यह व्यवस्था ही निरंतर इसे बनाए रखने में मदद करती है।

दूसरी ओर, सामाजिक आंदोलनों में उपरोक्त लक्षणों में से कोई भी नहीं होती। सामाजिक आंदोलनों के दो लक्षण, अर्थात्, निरंतर क्रिया और अनायसता एक ही समय पर साथ–साथ काम करती है। ये लक्षण सामाजिक आंदोलन को अन्य आंदोलनों से भिन्न करती हैं। इन विशेषताओं में से केवल किसी एक के अस्तित्व से सामाजिक आंदोलन पैदा नहीं होता है। ये समझाने के लिए, ट्रेड यूनियनों और सहकारी समितियों के पूर्व के उदाहरण से पता चलता है कि ये आंदोलन दीर्घ काल से चल रहे हैं। परंतु ऐसा इस इसलिए है, क्योंकि वे संस्थाकृत है न कि इसलिए कि ये अनायस है। दूसरी ओर असावधान चालक की पिटाई जैसा सामूहिक व्यवहार अनायस तो है परंतु यह निरंतर न होने के कारण सामाजिक आंदोलन नहीं है।

यहाँ हमने अनायसता पर जोर इसलिए दिया है, क्योंकि सामाजिक आंदोलन पदानुक्रम शेष विन्यास की निश्चित व्यवस्था नहीं होती। अतः इनमें संगठन के लक्षणों में नवीनता लाने की क्षमता होती है। वस्तुतः उन्नयन के किसी भी स्वरूप का संस्थाकरण अनायसता को रोकेगा, क्योंकि संस्थाकरण में स्थायी संरचना होती है।

यदि हम उन लक्षणों को ध्यान में रखते हैं जिनकी हमने अभी तक चर्चा की है, तो हम सामाजिक आंदोलनों को परिभाषित कर सकते हैं, लोगों के बड़े समूहों द्वारा सामूहिक क्रिया जो एक समाज में कुछ मूल्यों, मानदंडों और सामाजिक संबंधों को बदलने के उद्देश्य से की जाती है परंतु इस क्रिया मे अनायसता व निरंतरता दोनों होती हैं।

हमने पूर्व में इस भाग में सामाजिक आंदोलन की दो प्रमुख लक्षणों का उल्लेख किया था। एक सामाजिक आंदोलन जो कि एक सामूहिक प्रयास न केवल परिवर्तन को प्रोत्साहित करता है बल्कि परिवर्तन को अवरुद्ध करने के लिए भी करता है। इस विशेषता को ध्यान में रखा जाना चाहिए क्योंकि सभी सामाजिक आंदोलन वर्तमान स्थितियों को बदलने का प्रयास नहीं करते हैं। उदाहरण के लिए, हम सभी जानते हैं कि उन्नीसवीं सदी से ही सती प्रथा के सामाजिक प्रचलन को हटाने के लिए सामूहिक प्रयास हुए हैं। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ सक्रिय रूप से अभियान चलाया और मुख्य रूप से उन्नीसवीं शताब्दी में सती प्रथा के खिलाफ कानूनी कार्रवाई के लिए जिम्मेदारी थे। उनके अपने समय के दौरान भी, सती प्रथा को समाप्त करने वाले कानून की शुरूआत का विरोध करने के लिए सामूहिक प्रयास हुए।

जिस उत्साह के साथ कुछ लोगों ने राजस्थान के देवराला में सती समारोह मनाने व उसे प्रोत्साहित करने का प्रयास किया, वह एक आंदोलन था, जिसे परिवर्तन विरोधी माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसा आंदोलन हो सकता है, जो जातिवाद को प्रोत्साहित करते हैं या विशेष रूप से, जातियों के आधिपत्य को मजबूत करने का प्रयास करते हैं। आंदोलनों, जो कुछ जातियों के वर्चस्व या श्रेष्ठता या दूसरों पर एक विशेष धर्म का प्रचार करते हैं, जो आंदोलन सांप्रदायिक या जातीय पूर्वाग्रह फैलाते हैं, वे सभी आंदोलन परिवर्तन का प्रतिरोध करने वाले हैं। वे प्रचलित मानदंडों, मूल्यों और सामाजिक संबंधों को बदलने व उनके स्थान पर रुढ़िवादी मूल्य स्थापित करने का प्रयास है।

उदाहरण

हमने अब तक सामाजिक आंदोलनों की एक परिभाषा देने का प्रयास किया है। इससे हमे यह समझने में मदद मिलेगी कि सामाजिक आंदोलन क्या है और वे अन्य आंदोलनों से कैसे भिन्न है। हालांकि अब तक की चर्चा कुछ तात्विक प्रतीत हो सकती है। अब तक हम केवल सामाजिक आंदोलन की कुछ लक्षणों को जानते हैं। लेकिन सामाजिक आंदोलनों में ठोस क्या है? एक उदाहरण जो हमारे दिमाग में तुरंत आता है, वह है प्रख्यात समाज

शास्त्री, एम एन श्रीनिवास द्वारा दिये गए संस्कृतिकरण की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में हम पाते हैं कि एक जाति समूह के सदस्य अपनी स्थिति को अपने से उच्चतर जाति के लोगों की भाँति उठाने का प्रयास करते हैं। ऐसा करने के लिए वे उच्च जाति के सदस्यों के मूल्यों, अनुष्ठानों और सामाजिक व्यवहार को आंतरीकरण करके करते हैं। इसके लिए प्रोफेसर श्रीनिवास ने कर्नाटक में लिंगायतों के उदाहरण दिए हैं।

ऐसे ही उदाहरण हम दूसरे स्थान पर पा सकते हैं। ऐसे ही प्रयास पश्चिम बंगाल के कूच बिहार और जलपाईगुड़ी जिले में राजवंशियों ने क्षत्रिय जाति के अपना स्थान ऊँचा करने की माँग की। यह समुदाय उत्तर पूर्वी भारत के बोडो–कछाही समूह का है। इसके सदस्य उपरोक्त जिलों के अलावा असम और बांग्लादेश के पड़ोसी राज्यों के कुछ हिस्सों में निवास करते हैं। 1901 की जनगणना तक, राजवंशियों को कोच के साथ, एक ही समूह से संबंधित जनजाति के साथ जोड़ा गया था। तब यह माना जाता था कि दोनों एक ही जातीय मूल से आए थे। हालांकि 1909 में ठाकुर पंचानन बर्मन के नेतृत्व में राजवंशियों ने घोषणा की कि उनकी पहचान कोच से अलग थी। उन्होंने कहा कि वे वास्तव में उत्तर भारत के क्षत्रिय थे, जिन्होंने देश के इस हिस्से में शरण ली थी। क्षत्रिय सभा का गठन किया गया और इसने सभी राजवंशियों से अपनी मूल स्थिति को वापस लाने का आग्रह किया। राजवंशियों ने क्षत्रियों के अनुष्ठानों जैसे पवित्र धागा पहनना, विवाह प्रथाओं में बदलाव, गो मांस या सुअर का मांस खाने से परहेज, आदि करना शुरू कर दिया। उन्होंने अपने नाम के साथ ''ठाकुर'' लगाना भी शुरू कर दिया। 1911 की जनगणना के बाद से राजवंशियों को एक अलग समूह के रूप में मान्यता दी गई है।

यह आंदोलन एक सामाजिक आंदोलन हैं क्योंकि इसने पहले की चर्चा में सामाजिक आंदोलन के लक्षणों को प्रदर्शित किया था। हालांकि राजवंशियों ने संगठन (क्षत्रिय सभा) का गठन किया और अपनी प्रस्थिति ऊपर उठाने के लिए इसे संचालित किया, लेकिन यह मजदूर संघ या किसान संगठन जैसा औपचारिक संगठन नहीं था। सभा के पास सदस्यता से संबंधित नियमों और विनियमों का एक औपचारिक समुच्चय नहीं था।

यह सामाजिक आंदोलन के लिए आवश्यक नहीं है कि वह प्रस्थिति ऊपर उठाने के लिए ही कार्य किया जाए। राजनीतिक या सांस्कृतिक आयामों वाले आंदोलन भी हो सकता है। 1968 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में प्रारंभ हुए नक्सलवादी आंदोलन को एक सामाजिक आंदोलन भी माना जा सकता है। इस आंदोलन में किसान और कृषि कार्यकर्ता उन लोगों के खिलाफ हिंसक संघर्ष में शामिल थे, जिन्हें वे अपने शोषकों के रूप में परिभाषित करते थे। यह आंदोलन देश के अन्य हिस्सों में फैल गया और सरकार द्वारा इसे अवैध घोषित कर दिया गया। वास्तव में इसने इस आंदोलन को एक औपचारिक संस्थागत संरचना विकसित करने से रोक दिया। विभिन्न क्षेत्रों में लगे विभिन्न समूह केवल गुप्त रूप से कार्य कर सकते थे। हालाँकि 1978 के बाद सरकार ने नक्सलियों पर लगे प्रतिबंध को हटा दिया, बशर्ते उन्होंने हिंसा को त्याग दिया हो और अपनी मांगों के लिए शांतिपूर्ण साधनों का इस्तेमाल किया। परिणामस्वरूप कई नक्सली समूहों ने खुद को राजनीतिक दल घोषित किया और औपचारिक संस्थागत ढांचे विकसित किए। सामाजिक आंदोलन के रुप में इस आंदोलन का अस्तित्व समाप्त हो गया।

सांस्कृतिक क्षेत्र में भी हमारे सामाजिक आंदोलन हैं। हम साहित्य और नाटक में इस तरह के आंदोलनों का निरीक्षण कर सकते हैं। फिल्मों में, 1960 के दशक के अंत में प्रारंभ हुआ नया सिनेमा या ऐसी समानांतर सिनेमा आंदोलन एक ऐसा उदाहरण है। युवा फिल्म निर्माताओं ने ऐसी फिल्में बनाना प्रारंभ कर दिया, जो यथार्थवादी और आम आदमी के

रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी थी। यह वाणिज्यिक क्षेत्र में रोमांटिक फिल्मों के विपरीत था। यह आंदोलन किसी संघ या संघ जैसे औपचारिक संगठन से उत्पन्न नहीं हुआ था। यह फिल्म निर्माताओं द्वारा प्रारंभ किया गया था जिन्होंने आम धारणा साझा की थी कि अच्छे साहित्य पर आधारित यथार्थवादी फिल्में लोगों को दिखाई जानी चाहिए।

हम श्री नारायण धर्म परिपालन आंदोलन (एस.एन.डी.पी.) को एक ऐसे सामाजिक आंदोलन के उदाहरण के रूप में उद्धृत कर सकते हैं, जिसके सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक और धार्मिक आयाम हैं। यह आंदोलन केरल में 19वीं शताब्दी में एक पिछड़ा वर्ग आंदोलन के रूप में खड़ा हुआ। यह अछूत जातियों (केरल में त्रावणकोर के ताड़ी बनाने वाले इड़वा) और सवर्ण हिंदू उच्च जाति (नायर, नंबुदिरी) के बीच संघर्ष पर केंद्रित है। इड़वा का कई अनेक आनुष्ठानिक के साथ–साथ नागरिक पाबंदियों को झेलना पड़ता था। उन्हें उच्च जाति से दूरी बनाए रखनी होती थी, वे उच्च वर्गों द्वारा उपयोग किए गए सड़कों, तलाबों, कुओं और मंदिरों का उपयोग नहीं कर सकते थे। उन्हें पारंपरिक जाति के हिंदू स्कूलों में प्रवेश से वंचित कर दिया गया और उन्हें प्रशासनिक नौकरियों से दूर रखा गया। श्री नारायण गुरू स्वामी के नेतृत्व में, इड़वा ने सामाजिक उत्थान का एक कार्यक्रम तैयार किया। जिन मुद्दों को उन्होंने लिया था, वे पब्लिक स्कूलों में प्रवेश, सरकारी नौकरी में भर्ती, मंदिर में प्रवेश और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के अधिकार से सम्बंधित थे। वे सामाजिक गतिशीलता सत्ता के पारंपरिक वितरण में बदलाव के लिए लड़े, और खुद को एक बृहद नृजातीय समूह में बदल लिया, जो राजनीतिक रूप से व्यवहार्य हो गया। (राव 1974:22)

सोचें और करें 1

भारत का नक्शा ले उस पर सभी राज्यों को अंकित करें। कम से कम एक सामाजिक आंदोलन की पहचान करें, जो प्रत्येक राज्य से जुड़ा हो। याद रखें कि एक सामाजिक आंदोलन एक से अधिक राज्यों को कवर कर सकता है। यदि संभव हो तो अपने अध्ययन केन्द्र में अन्य छात्रों द्वारा दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना करें।

अब हम देख सकते हैं कि सामाजिक आंदोलनों के विविध आयाम हैं। जैसाकि वे हमारे जीवन के सभी हिस्सों को कवर कर सकते हैं। ऐसे सामाजिक आंदोलन हो सकते हैं, जो परिवर्तन को प्रोत्साहित करते हैं और ऐसे लोग हो सकते हैं, जो परिवर्तन को अवरूद्ध करते हैं। इस अंतर को ध्यान में रखा जाना चाहिए क्योंकि सभी सामाजिक आंदोलन मौजूदा स्थिति (ई एस ओ 12) को बदलने का प्रयास नहीं करते हैं। अब हम सामाजिक आंदोलनों के दूसरे पहलू अर्थात् सामाजिक आंदोलन का अध्ययन की ओर रूख करते हैं।

12.2.2 सामाजिक आंदोलन के अध्ययन

सामाजिक आंदोलनों के अध्ययन ने मुख्य प्रश्नों (डेल्पोर्टा और डीयानी 2006) के विभिन्न पहलुओं को उल्लेखित किया है। प्रश्नों का पहला पहलू सामाजिक संघर्षों के पैटर्न में संरचनात्मक परिवर्तन और रूपांतरण के बीच के संबंध को संदर्भित करता है; प्रश्नों का दूसरा पहलु सामाजिक संघर्षों में सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व की भूमिका से संबंधित है, प्रश्नों का एक तीसरा पहलु उस प्रक्रिया को संबोधित करता है, जिसके माध्यम से मूल्यों, रूचि और विचारों को सामूहिक क्रिया में बदल दिया जाता है और अंत में कुछ सामाजिक, राजनीतिक और/या सांस्कृतिक संदर्भ कैसे सामाजिक आंदोलनों की सफलता की संभावनाओं और रूप को प्रभावित करता है।

जबकि ये प्रश्न निश्चित रूप से सामूहिक क्रिया और सामाजिक आंदोलनों पर वर्तमान बहस की गहनता को पूरी तरह से प्रतिबिंबित नहीं करते हैं, उन्होंने निश्चित रूप से पिछले

दशक में चर्चाओं को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संरचनात्मक परिवर्तन और रूपांतरण के बीच संबंध ने वालरस्टीन (2004) द्वारा विकसित नवमार्क्सवादी विश्व प्रणाली सिद्धांत में केंद्रीय भूमिका निभाई है। वैश्विक पूँजीवादी के इतिहास को लेखीबद्ध करते हुए, यह वैश्विक पूँजीवादी के प्रतिरोध में सामूहिक क्रिया का संरचनात्मक ढांचा पेश करते हुए सामाजिक आंदोलनों की एक महत्वपूर्ण भूमिका देखता है। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से 1980 (मोट्टा और गनवेल्ड निल्सन, 2011) के दशक के बाद से गलोबल साउथ में विकासात्मकता, नवउदारवाद और अस्वामित्व के खिलाफ सामाजिक आंदोलनों पर शोध में इस्तेमाल किया गया है। नील स्मेलयर (1962) के अनुसार पिछले उप व्यवस्थीय तनाव के बिना कोई सामाजिक आंदोलन नहीं हो सकता है, क्योंकि इस तरह के तनाव सामूहिक व्यवहार की उत्पत्ति महत्वपूर्ण निर्धारकों का समूह हैं। स्मेलर के लिए भी, केवल वे सामाजिक आंदोलनों को विस्तृत ध्यान देने योग्य है जो इस अर्थ में सफल हैं कि वे नये समाज में उन कार्यों को करत हुए पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा बन गए थे, जिन्हें पुराने समय में अन्य संघों ने किया था।

प्रश्न का एक और पहलु सांस्कृतिक अभ्यावेदन की भूमिका और प्रक्रिया से संबंधित है, जिसके लिए मूल्य, रूचियाँ और विचार सामूहिक क्रिया में बदल जाते हैं। यह विश्लेषण एक ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट सामाजिक गठन को अलग–अलग औद्योगिक समाज के रूप में संदर्भित करता है। इस तरह के ऐतिहासिक आधार ''नये आंदोलनों'' के उद्भव के लिए संरचनात्मक निर्धारण कारक प्रदान करते हैं। पारंपरिक सामाजिक आंदोलनों से अलग रणनीतियों, लक्ष्यों और सदस्यता नये सामाजिक आंदोलनों की विशेषता है। नये सामाजिक आंदोलन, नागरिक समाज की संरचनात्मक परिवर्तन की अभिलाषा और हमारे वर्तमान ज्ञान धारित समाज में सूचना के बढ़ते महत्व और सर्वव्यापकता से उदय होते हैं। नए सामाजिक आंदोलन, सामूहिक क्रियाएं के शिथिल रूप से जुड़े हुए समूह, जो साधारण क्रांति के पारंपरिक सामाजिक आंदोलन को विस्थापित कर चुके हैं। (बुचलर, 1993)

नए सामाजिक आंदोलन सिद्धांत के लिए महत्वपूर्ण योगदानकर्ताओं मे क्लॉस ऑफ, अल्बर्टो, मेलुकी, एलेनटॉरीन और जुर्गेन हेबरमास शामिल हैं। क्लास ऑफे पारंपरिक और नए पाराडाईम की सामूहिक क्रिया की तुलना पर केंद्रित है। एलेनटॉरीन उत्तर औद्योगिक समाजों में नए सामाजिक आंदोलनों के उद्भव की जाँच करता है। अल्बर्टो मेलुकी सूचनाओं का आंदोलन समकालीन संघर्षों और सामूहिक कार्रवाई को कैसे प्रभावित करते हैं? का विश्लेषण करता है। हेबरमास का तर्क है कि सिस्टम एकीकरण और सामाजिक एकीकरण के बीच तनाव से नए सामाजिक आंदोलनों का विकास होता है। हालांकि, नए सामाजिक आंदोलन सिद्धांत के आलोचक नए सामाजिक आंदोलन सिद्धांत के साथ उदारवादी राजनीति पर ध्यान केंद्रित करते हैं और रूढ़िवादी राजनीति और सामाजिक आंदोलनों के लिए उपेक्षा करते हैं। इस सिद्धांत की इस बात के लिए भी आलोचना की गई है कि नए सामाजिक आंदोलन के मिशन और लक्ष्यों का अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों और एजेंडा द्वारा ग्रहण किया गया है।

इसके अलावा, प्रश्नों का एक और पहलु (सेट) इस बात से संबंद्ध है कि एक निश्चित संदर्भ जैसे सामाजिक, राजनीतिक और/या सांस्कृतिक संदर्भ सामाजिक आंदोलनों की सफलता की संभावनाओं को प्रभावित करता है। इसकी जाँच दो पाराडाइमों का उपयोग करके की गई हैः संसाधन जुटाना और राजनीतिक प्रक्रिया सिद्धांत। सामाजिक आंदोलनों का संसाधन जुटाना सिद्धांत सामूहिक क्रिया के लिए लोगों को जुटाने में शक्ति और शक्ति संघर्ष की भूमिका पर केंद्रित है। यह सामाजिक आंदोलनों की विशेषता और सफलता का विश्लेषण करने के लिए समूह के उपलब्ध संसाधनों और सामाजिक–राजनीतिक कार्यतंत्र

में समूह के सदस्यों की स्थिति सहित संरचनात्मक कारकों की जाँच करता है। संसाधन जुटाने के सिद्धांत के अनुसार, सामाजिक आंदोलनों में भागीदारी एक तर्कसंगत व्यवहार है, जो भागीदारी की लागतों और लाभों के बारे में एक व्यक्तिगत निष्कर्ष पर आधारित है, न कि हाशिए और असंतोष (कलंडरमन, 1984) के लिए मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के जन्म पर। इसका राजनीतिक रूप राजनीतिक प्रक्रिया सिद्धांत है। यह न केवल सामान्यीकृत संसाधनों के अस्तित्व और सबसे महत्वपूर्ण, सामान्यीकृत संसाधनों और आपातकालीन संगठनों के अस्तित्व पर जोर देकर राजनीतिक की प्रधानता पर जोर देता है, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण, अनुकूल ''राजनीतिक अवसर की संरचना'' का अस्तित्व है। राजनीतिक अवसर संरचना का तात्पर्य राजनीतिक व्यवस्था की ग्रहणशीलता या शुभेद्यता से है, जो कि चुनौतीपूर्ण समूहों द्वारा संगठित विरोध के लिए है। जब राजनीतिक अवसर संरचना का विस्तार होता है, तो तीव्र गति की गतिशीलता और प्रभावशीलता की लहरें उठती हैं। (मैक एडाम (सम्पाक) 2001) संसाधन जुटाना और राजनीतिक प्रक्रिया के सिद्धांत की आलोचना की गई है कि उन्होंने शिकायतों की भूमिका को सरल बनाया जाए और मूल्यों और सांस्कृतिक तत्वों की भूमिका को कमतर दिखाया।

सामाजिक आंदोलन और प्रतिरोध, राजनीतिक कार्रवाई की दो अलग अवधारणाओं की ओर इशारा करते हैं। हालाँकि ये अवधारणाएं एक बड़ी सीमा तक व्याख्या करती है कि स्पष्ट रूप से कई सामाजिक आंदोलन खुद को आधित्पत्य क्रम (हेजमोनिक ऑर्डर) का विरोध करते हुए देखते हैं– दोनों एक दूसरे के साथ सहअस्तित्व में नहीं हैं। प्रतिरोध का तात्पर्य एक कुलीन व्यवस्था के अस्तित्व से है, जिसके खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया जाता है, यदि केवल इसकी सीमा के भीतर सापेक्ष स्वायत्तता के स्थान को सुरक्षित करने के लिए किया जाए। (मैके 1996, डुनकॉम्बे 2002) इसके विपरीत सामाजिक आंदोलनों के संघर्षों को व्यवस्था विराधी शब्दों में परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए। बल्कि, उनके लक्ष्य विशिष्ट स्थानीय शिकायतों से लेकर संपूर्ण वैचारिक व्यवस्थाओं (पितृसत्ता, जातीयतावाद, आदि) तक का राग अलापते।

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक आंदोलन से आपका क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) संसाधन जुटाना सिद्धांत को परिभाशित करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) नए सामाजिक आंदोलन की विषेशताओं को उजागर करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) नए सामाजिक आंदोलन क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 प्रतिरोध

प्रतिरोध की परिभाषा पर थोड़ी सहमति है। एक व्यवस्थित साहित्य समीक्षा के आधार पर, हालैंडर और ईनोव्हनेर (2004) का तर्क है कि हालांकि इस बात पर सहमति है कि प्रतिरोध में कार्रवाई की भावना और विरोध की भावना शामिल है, तो असहमति की दिशाएं (क्या एक विपक्षी कार्रवाई तुरंत दूसरों को दिखती है और प्रतिरोध के रूप में जानी जाती है) और सुविचारितता (क्या एक कर्त्ता को ज्ञात है कि वह विरोध कर रहा है) अवधारणाओं के आसपास हल होती है।

डैनी ट्रॉम और डैनियल सेफई (2013) के अनुसार, प्रतिरोध की धारणा में मतलब आदत, कल्पना और निर्णय के आयाम निहित हैं। यह स्पष्ट सामाजिक अशांति के किसी भी संगठित कार्रवाई, सामूहिक और सार्वजनिक, के लिए कम है। आधारित राजनीतिक होने के नाते, प्रतिरोध एक शक्ति, एक प्रमुख आदर्श या एक सामाजिक नियंत्रण को समाप्त करने की इच्छा व्यक्त करता है। यह रोजमर्रा की जिंदगी की पृष्ठभूमि में फैला होता है। यह कार्रवाई का एक सुसंगत प्रदर्शनों का समूह नहीं है, बल्कि इस तरह के व्यवहार, जैसे चालबाजी, चालाकी, दोहरे अर्थ, हास्य, बनावटी अज्ञानता, काम करने के लिए नियम, अनुपस्थिति के रूप में खुद को दिखाता है। यह विवाद के सभी गतिकों (Dynamics) के साथ आता है।

इस भाग में हम माइकल डे सर्टिफ्यू (1984), ई.पी. थॅम्पसन (1971); एग्रामसी (1988); और जेम्स स्कॉट द्वारा तैयार किए गए प्रतिरोध की अवधारणाओं में सामने आएंगे।

12.3.1 ''रणनीति'' के रूप में प्रतिरोध

माइकल डे सर्टिओ (1994) इस प्रकार की विरोधी क्रिया को परिभाषित करने वाला पहला व्यक्ति था, जिसे ''रणनीति'' कहा जाता था। इसमें चालाकी के सभी अदृश्य प्रचलनों को शामिल किया गया है, जिसके द्वारा अधीन व्यक्ति स्वयं पर लागू बाधा से खिलबाड़ करते हुये, ''प्रभुत्व'' क्रम को भरता है। आमने सामने सत्ता का सामना करने के बजाए, ये रणनीतियाँ अनुशासनात्मक उपकरणों के अंतःविषय और स्वायत्ता के रिक्त स्थानों के बीच के अंतर में स्थापित हो जाती है। वह शक्ति की रणनीतियों और प्रतिरोध की युक्ति के बीच विभेद करता है। प्रतिरोध की रणनीति एक उचित (स्थानिक या संस्थागत) स्थानीयकरण पर भरोसा नहीं कर सकती है, और न ही दूसरे को भेदने वाली सीमा रेखा पर एक दृश्यमान समग्रता के रूप में रहती है। युक्तियों का स्थान दूसरे से संबंधित है। एक युक्ति अन्य स्थानों पर जोर देती है। (डी क्रेटो 1984 :XiX)

12.3.2 प्रतिरोध के ''प्रति आंदोलन'' के रूप में

प्रतिरोध की धारणा का एक दूसरा स्रोत ई.पी. थोम्पसन (1971) की परंपरा में प्रभुत्व वर्गों, किसानों या श्रमिकों की नैतिक अर्थव्यवस्था पर किये गये अध्ययनों में पाया जाता है। यहां फिर से, संस्थागत संगठन और संगठित संघर्ष से ध्यान हटकर उपसंस्कृति न्यूनाधिक स्वायत्तता पर जा टिकता है, जिसे अंग्रेजी श्रमिक एक विस्तारित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में शोषण का प्रतिरोध करने के लिए फ्रेम और संसाधनों के रूप में साझा उपयोग करते हैं। तब प्रतिरोध का अर्थ है जो एकजुटता की लोकप्रिय परंपराओं से पोषित होकर सत्ता के दुर्व्यवहार के खिलाफ, शासक वर्ग की ओर से नाजायज दुर्व्यवहार विरूद्ध किया गया।

12.3.3 प्रतिरोध ''प्रति अधिपत्य'' के रूप में

प्रतिरोध की धारणा की तीसरी प्रेरणा ''*दे प्रिज़न नोटबुक*'' में एंटोनियो ग्रामस्की का एक प्रसिद्ध अध्ययन है। ग्रामस्की दो विचारों को स्वीकार करते हैं जो सामाजिक आंदोलन की चलन पर केंद्रित प्रतिरोध के विचार को व्यक्त करने के लिए बहुत बड़ा मूल्य है।

प्रथम उसके आधिपत्य की धारणा है। ग्रामस्की का आधिपत्य एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें लोकप्रिय सहमति के निर्माण, पुनर्निर्माण और लामबंदी शामिल हैं, जो किसी भी ''प्रमुख समूह'' द्वारा निर्मित किया जा सकता है, जो इसे नियंत्रित करता है और इसका उपयोग करता है। इस मामले में प्रतिरोध का अर्थ है श्रमिकों की एक क्षमता जो खुद को प्रमुख विचारधारा से मुक्त करती है, और स्थापित मूल्यों को उखाड़ फेंकने वाले प्रतिकार विमर्शों और आख्यानों का निर्माण करती है।

ग्रामस्की द्वारा व्यक्त द्वितीय विचार ''निष्क्रिय क्रांति'' की परिभाषा से संबंधित है। उन्होंने निष्क्रिय क्रांति को दो तरह से परिभाषित किया है।

(i) जन भागीदारी के बिना एक विद्रोह के रूप में (ii) एक ''आणविक'' सामाजिक रूपांतरण के रूप में जहाँ समाज की उस सतह के नीचे पनपता है, खुलकर आगे नहीं बढ़ सकता है। दूसरी परिभाषा जिसके लिए वह एक उदाहरण के रूप में ब्रिटिश शासन के खिलाफ गांधी के अहिंसक आंदोलन का हवाला देते हैं, राजनीतिक सिद्धांत में आर्थिक और राजनीतिक आधिपत्य के प्रतिरोध के रोजमर्रा के रूप में पेश करने में मदद करता है।

उपाश्रित और सत्ताहीन कर्त्ता अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए, वाचलता दृष्टिकोणों और प्रचलनों के संपूर्ण समुच्चय के माध्यम से सत्ता को उपेक्षा करने या ध्यान भटकाने में सक्षम होते हैं जिन्हें वे प्रमुख समूहों की आंखों से छिपा जाते हैं।

12.3.4 प्रतिरोध ''आधारिक राजनीति'' के रूप में

लडाकापन या निमग्न लोकप्रिय प्रतिरोध की रणनीतियों के बीच लुप्त संबंध की जाँच स्कॉट (1985; 1990) द्वारा की गई, जो अप्रत्यक्ष चुनातियों के रूप में प्रतिरोध की अवधारणा प्रस्तुत करता है। मलेशिया के किसानों पर जेम्स स्कॉट का अध्ययन प्रतिरोध की धारणा का अच्छा चित्रण और सबलटर्न समूहों के रोजमर्रा के प्रतिरोध में सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि का सबसे प्रभावशाली स्रोत है। कमजोर के अपने हथियारों में (1985), मलय किसानों और शक्तिशाली जमींदारों/भूस्वामियों के बीच संघर्ष का एक सूक्ष्म अध्ययन कर, स्काट के शोध ने निष्कर्ष निकाला कि पारंपरिक रूप से विद्वानों का ''किसान विद्रोह पर जोर गलत है।'' ऐसे शानदार टकराव के स्थान पर, स्कॉट ने किसानों और जमींदारों के बीच होने वाले कम नाटकीय संघर्षों पर ध्यान केंद्रित किया जिसे उन्होंने प्रतिरोध के ''रोजमर्रा के रूप'' कहा है। इस शब्द से उनका तात्पर्य अधीनस्थों और उनके पर्यवेक्षकों के बीच होने वाले अभियोगी लेकिन निरंतर संघर्ष से था।

इसीलिए उन्होंने ''अपेक्षाकृत शक्तिहीन समूहों के सामान्य हथियारों की जांच कीः पैर, घसीटना, निष्कासन, झूठे अनुपालन, चोरी बनाबटी, अज्ञानता, बदनामी, आगजनी, तोड़फोड़ आदि'' (स्कॉट 1985:29)। बाद के काम, वर्चस्व और प्रतिरोध की कला (1990) में, वह इस बात की छानबीन करता है कि वह ''आधारिक राजनीति'' को क्या कहता है। अर्थात्, कम निम्न प्रोफाइल वाले, राजनीतिक संदर्भों में विषयों का प्रच्छन्न प्रतिरोध, जिसमें खुली या संस्थागत राजनीतिक क्रिया दमनकारी वर्चस्व के कारण व्यवहार्य नहीं है। इंफ्रा राजनीति के उस आधार के रूप में चित्रित किया जा सकता है जो वह छिपी हुइ लिपियों और सार्वजनिक परिवहन को सार्वजनिक लिपियों के नाम से जाना जाता है। सार्वजनिक लिपियों के मुख्य अभिजात वर्ग के स्वयं के चित्र हैं क्योंकि वे स्वयं प्रतीत होंगे। (स्कॉट, 1990:18), एक आंशिक और पक्षपाती कथा जो शक्ति/सत्ता संबंधों के प्राकृतिककरण के उद्देश्य से है। छिपे हुए लिपियों, सार्वजनिक लिपियों के लिए अपसरण प्रतिक्रियाएं हैं, जो आकाश का अनुभव है। यह सामूहिक विपक्षी कथा है जिसे सार्वजनिक क्षेत्र से छुपाया जाता है, जहाँ पर प्रतिवाद और आज्ञाकारिता के पहलू प्रदर्शित होते हैं। इंफ्रा–पॉलिक्सि और रोजमर्रा के प्रतिरोध पर ध्यान केंद्रित करने में, स्कॉट विद्रोही आंदोलनों के किसान विद्रोह के महत्व से इनकार नहीं कर रहा है, बल्कि, वह हमारा ध्यान छिपे हुए कम नाटकीय और समान रूप से प्रतिरोध के वास्तवकि रूपों की ओर निर्देशित कर रहा है जो इस तरह के पोषण करते हैं। जैसे सतह पर आने से पूर्व दशकों तक सत्ता के खिलाफ शानदारी विस्फोट करते हैं। जैसा कि वह कहते हैं कि इस तरह की अव्यक्त धाराएं ''दृढ़ आधार'' हैं, जिस पर प्रतिरोध के अन्य रूप विकसित हो सकते हैं और वे इस तरह के अन्य रूपों के असफल या उत्पादित होने के बाद बने रहने की संभावना रखते हैं, बदले में, असमातता का एक नया पैटर्न उभरता है (1985:273)।

बोध प्रश्न 2

1) प्रतिरोध क्या है?

.....

.....

2) प्रतिरोध की चार विषेशताओं को बताएं।

3) ''आधारिक राजनीति'' के रूप में प्रतिरोध चर्चा करें।

4) ''प्रति आधिपत्य के रूप में प्रतिरोध'' से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

12.4 सारांश

विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियाँ और प्रतिरोध की अवधारणा विभिन्न प्रकार के आंदोलनों को समझने के लिए विश्लेषणात्मक लेंस की पेशकश करती है। सभी सामाजिक आंदोलनों को प्रतिरोध से संबंधित होना चाहिए, और प्रतिरोध ओर विकल्प के बीच विभाजन रेखा पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। सामाजिक आंदोलन के साहित्य से पता चलता है कि शासन के खिलाफ प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा करने के लिए आंदोलन क्या सक्षम बनाता है, यह कितनी अच्छी तरह से क्रूर बल से लड़ता है। बल्कि यह स्थिर–राज्य के दौरान निर्मित राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और वैचारिक नींव है, जो आंदोलन को शासन दमन को विक्षेपित करने और एक रैली बिंदु में बदलने में सक्षम बनाता है। प्रतिरोध आंदोलनों की तब सफलता मिलती है जब वे एक ही रणनीति पर बिछाने के बजाए घातक और गैर घातक दोनों तरीकों को रणनीतिक रूप से नियोजित कर सकते हैं। प्रतिरोध की श्रेणी विशेष रूप से शक्ति की उपस्थिति और खेल पर प्रकाश डालती है, जो कि सामाजिक आंदोलनों के लिए बहुत से विहित दृष्टिकोण संसाधनों, राजनीतिक अवसरों और सामूहिक पहचानों के एकत्रीकरण पर केंद्रित है। इसके अलावा, प्रतिरोध भी सामाजिक आंदोलनों की तुलना में अधिक व्यापक घटनाओं को कवर करता है, जिसमें सामाजिक आंदोलनों, घेराव कार्रवाई, विरोधों और घटनाओं को शामिल किया जाता है, जो अपेक्षाकृत सांयोगिक, गैर समन्वित और अल्पकालिक हो सकते हैं। इस प्रकार प्रतिरोध प्रथा और रूपों की एक विपक्षी रेंज की खोज के लिए अपेक्षाकृत खुला और लचीला विश्लेषण क्षेत्र प्रदान करता है।

12.5 शब्दावली

सामाजिक आंदोलन : बलमर (1969:99) के अनुसार सामाजिक आंदोलनों को एक सामूहिक उद्यम के रूप में देखा जा सकता है, जो जीवन के एक नए क्रम को स्थापित करने की मांग करता है। वे अशांति की स्थिति में अपनी स्थापना करते हैं। और जीवन के वतमान स्वरूप के असंतोष से एक ओर अपनी प्रेरणा शक्ति प्राप्त करते हैं, और दूसरी ओर, जीवन की एक नई प्रणाली के लिए इच्छाओं और आशाओं से।

प्रतिरोध : प्रतिरोध का तात्पर्य एक कुलीन व्यवस्था के अस्तित्व से है, जिसके विरूद्ध संघर्ष छेड़ दिया जाता है, यदि केवल उसकी सीमा के भीतर सापेक्ष स्वायत्तता के स्थान को सुरक्षित करने के लिए।

युद्ध नीति/रणनीति : इसमें चालाक की सभी अदृश्य प्रथाओं को शामिल किया गया है, जिसे द्वारा 'वर्चस्व' प्रमुख आदेश को पूर्ण करता है, बाधाओं के साथ जो इसे लागू कराता है।

आधारित राजनीति : अपेक्षाकृत शक्तिहीन समूहों के साधारण हथियारः पैर, घसीटना, विच्छेदन, झूठी अनुपालन, पाइलरिंग, फंसे हुए अज्ञान, बदनामी, आगजनी, तोड़फोड़ और आदि।

आधिपत्य : यह एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें लोकप्रिय सहमति के उत्पादन प्रजनन और लामबंदी शामिल है, जिसे किसी भी ''प्रमुख समूह'' द्वारा निर्मित किया जा सकता है, जो इसे धारण कर लेता है और इसका उपयोग करता है।

संसाधन लामबंदीकरण : यह संरचनात्मक कारकों की जांच करता है, जिसमें समूहों के उपलब्ध संसाधनों और सामाजिक आंदोलनों के चरित्र और सफलता का विश्लेषण करने के लिए सामाजिक राजनीतिक नेटवर्क में समूह के सदस्यों की स्थिति शामिल है।

राजनीतिक प्रक्रिया सिद्धांत : यह इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि राजनीतिक अवसरों के विस्तार से एक आंदोलन की गतिशीलता को प्राप्त करने की संभावना कैसे प्रभावित होती हैं यह किस रूप में होती है और संस्थागत राजनीति और सामाजिक आंदोलनों के बीच संबंध।

नए सामाजिक आंदोलन : उन्हें संरचनात्मक परिवर्तन के लिए नगारिक समाज की इच्छा के रूप में देखा जाता है, और हमारे बढ़ते ज्ञान आध ाारित समाज में सूचना के बढ़ते महत्व और सर्वव्यापकता से उत्पन्न होता है।

12.6 उपयोगी पुस्तकें

डेला पोर्सा, डी. एण्ड दीयानी, एम (1999) सोशल मूवमेंटस : एन इंट्रोडोक्शन, ऑक्सफोर्डः बैलेकवेल।

स्कॉट, जे.सी. (1990), डोमीनेशन एण्ड आर्टस ऑफ रजिस्टेंसः हिडन ट्रांसक्रिप्सयेले युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हेवन, सीटी।

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) ट्रैरो के अनुसार (1998:2) आंदोलनों के सापेक्ष स्थायित्व। उनके अनुसार विवादस्पर राजनीति तब होती है, जब आम लोग, अक्सर अधिक प्रभावषाली नागरिकों के साथ लीग में होते हैं, घनीभूत सामाजिक नेटवर्क और सस्ती द्वारा सांस्कृतिक रूप से गुंजायमान, कार्रवाई उन्मुख प्रतीकों द्वारा समर्थित होने पर कुलीन अधिकारियों और विरोधियों के साथ टकराव में शामिल हो, विवादास्पर राजनीति विरोधियों के साथ निरंतर बातचीत की ओर ले जाती है।

2) यह संरचनात्मक कारकों की जाँच करता है, जिसमें समूहों के उपलब्ध संसाधन और सामाजिक आंदोलनों के चरित्र और सफलता का विश्लेषण करने के लिए सामाजिक राजनीतिक नेटवर्क में समूह के सदस्यों की स्थिति शामिल है।

3) नई सामाजिक आंदोलनों की विशेषताएं पारम्परिक सामाजिक आंदोलनों से अलग रणनीति, लक्ष्य और सदस्यता है।

4) बियुचलर (1993) के अनुसार, नए सामाजिक आंदोलन सामूहिक क्रियाओं के एक शिथिल रूप से जुड़े समूह हैं, जिन्होंने सर्वहारा क्रांति के पारंपरिक सामाजिक आंदोलन को विस्थापित कर दिया है।

अपनी प्रगति जाँचे 2

1) प्रतिरोध का तात्पर्य एक कुलीन व्यवस्था के अस्तित्व से है, जिसे विरूद्ध संघर्ष छेड़ दिया जाता है, यदि केवल उसकी सीमा के भीतर सापेक्ष स्वायत्तता के स्थान को सुरक्षित करने के लिए।

2) प्रतिरोध की चार विशेषताएं हैं– रणनीति, काउंटर मूवमेंट, काउंटर आधिपत्य और इंफ्रा–पॉलिटिक्स

3) अपेक्षाकृत शक्तिहीन समूहों का साधारण हथियारः पैर, घसीटना, विच्छेदन, झूठी अनुपालना, तीक्ष्णता, फैला हुआ, बदनामी, आगजनी तोड़फोड़ और इत्यादि।

4) यह एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें लोकप्रिय सहमति के उत्पादन, प्रजनन और लामबंदी (मोबलाइजेशन) शामिल है, जिसे किसी भी ''प्रमुख समूह'' द्वारा निर्मित किया जा सकता है, जो इसे धारण कर लेता है और इसका उपयोग करता है।

संदर्भ

1. बलूमर, एच. (1969), 'कलेक्टीव बिहेवियर', इन ए. मैक कलंग ली (संपादक), प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी, न्यू यॉर्क, एन वाएः बारनस एण्ड नोबल।

2. बूचलर, स्टीवन, एम (1993), 'वियोड रिर्सोस मोबलाइजेशन : एमरजींग ट्रेंड इन सोशल मूवमेंट थ्योरी', सोशियोलॉजी, क्वाटरली, 34(2), 217।

3. दे सर्टिउ, एम (1984), द पेक्टीस ऑफ एवरीडे लाईस, युनिवर्सिटी ऑफ केलीफोर्निया प्रेसः बर्कले।

4. डुनकॉम्बे, एस (2002), द कल्चरल रजिस्ट्रेंस रिडर, लंदनः वरसो

5. ऐयरमैन, आर. एण्ड जेमिसन, ए (1991), सोशल मूवमेंटसः ए कांजीनटीव एपरोजच केम्ब्रेजः पॉलिटी।

6. फ्रीमन, जे एण्ड जॉनसन, वी. (1999), वेव ऑफ प्रोटेस्ट : सोशल मूवमेंटस सिंस द सिक्टीस लनहम, मेरीलेंडः रोमेन एण्ड लिटिल फिल्ड।

7. ग्रामस्की, ए (1988) एन एनटीनो ग्रामस्की रीडर : सलेक्टेड राईटिंग्स 1916–1935. शोकेन बुक्स, न्यू यॉर्क।

8. हॉलेंडर, जे.ए., इनवोहनर, आर.एल (2004), कॉनसेप्चुवलाइजींग रजिस्टेंस, सोशियोलॉजीकल फार्म, 19(4): 533–554।

9. कलेनडरमैन, बी (1984), 'मोबलाइजेशन एण्ड पॉटीसिपेशन : लोकल साईकालॉजीकल एक्सपेंशन ऑफ रिर्सोस मोबालाइजेशन थ्योरी, अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, 49 (5), 583–600।

10. मैक एडम, डी, टैरो, एस,सी, (2001), डायनामीक्स ऑफ कनटेंशन, कैमब्रिज, य.के. : कैमब्रिज युनिवर्सीटी प्रेस।

11. मैके, जी. (1996), सेंस लैस ऑफ बियुटी, लंदन : वर्सो।

12. मोटा, एस एण्ड गुनवेल्ड नीसेन (2011), सोशल मूवमेंटस इन द ग्लोबल साउथ, न्यू यॉर्क : पालग्रेव मैकमिलन

13. स्कॉट, जे सी (1985), वेपसनस ऑफ द वीकः एवरीडे फार्म पिजेंट रजिस्टेंस येले युनिवर्सीटी प्रेस, न्यू हेवन, सीटी

14. स्कॉट, जे सी (1990), डोमीनेशन एण्ड आर्टस ऑफ रजिस्टेंस : हिडन ट्रांसक्रिप्टस येले युनिवर्सीटी प्रेस, न्यू हेवर सीटी

15. स्नो, डी.ए. (2004), 'सोशल मूवमेंटस एज चैलेजेस टु अथोर्योटीः रजिस्टेंस टु एन एमर्जीग कॉनसेप्चुअल हेजमनी; रिसर्च इन सोशल मूवमेंटस कॉनलिक्ट एण्ड चेंज 25:3–25।

16. टैरो, एस (1998), पॉवर इन मूवमंट, केम्ब्रेज, केम्ब्रेज युनिवर्सीटी प्रेस।

17. थॉमसन, इ.पी. (1971), 'द मोर्ल इकॉनॉमी ऑफ द इंग्लिश कउड इन द 18जी सेंचुरी, पास्ट एण्ड एर्जेंट 50, 76–136।

18. वॉलरसेंन, आई (2004), वर्ल्ड सिंस्टम एनालाईस : एन इट्रोक्शन देहरादून, एन सीः डुक ।